मातृ दर्शन

स्वामी मौनानन्द पर्वत (भाई जी)

अनुवादिका—
शीला

मातृ दर्शन

उत्सर्ग—मातृ सन्तानगण

स्वामी मौनानन्द पर्वत (भाईजी)

आनन्दमयी आश्रम

भदैनी, बनारस

प्रकाशक
श्री कुसुम
आनन्दमयी आश्रम
भदैनी, बनारस

श्रीकृष्ण जन्माष्टमी

मूल्य—दो रुपया

मुद्रक
परेशनाथ घोष
सरला प्रेस, बनारस

निवेदन

(प्रथम संस्करण)

श्री श्री आनन्दमयी माँ के जीवन की अनेक लीलाएँ लुप्त सी हो रही थीं तब हम सबने भाई जी से (ज्योतिश चन्द्रराय आई०एस० ओ०) उन्हें प्रकाशित करवाने का अनुरोध किया। अपने जीवन में उन्होंने श्री श्री माँ की जिन लीलाओं का प्रत्यक्ष दर्शन किया उन्हीं में से कुछ इस पुस्तक में लिपिबद्ध हुई हैं। इस ग्रंथ के प्रकाशन के पहले ही उनका देहान्त हो गया, इसका दुःख है।

भाई जी कहते थे। विराट आकाश की छाया खण्ड रूप में जलाशयों में पड़ने से जिस प्रकार आकाश के विराटत्व का पूर्ण ज्ञान नहीं हो सकता है वैसे ही माँ की अनन्त महिमा का पूर्ण परिचय भी मुझ जैसे क्षुद्र आधार द्वारा नहीं मिल सकता है।"

फिर भी मुझे ऐसा लगता है कि श्री श्री जननी के दो एक बिन्दु द्वारा ही हम सबों का जीवन धन्य हो जायगा।

श्रीअटलबिहारी भट्टाचार्य

निवेदन

(द्वितीय संस्करण)

जब श्री श्री माँ और पिता जी के साथ भाई जी कैलाश तीर्थ परिक्रमा को गए तो मातृदर्शन की हस्तलिपि प्रकाशन के लिए मुझे दे गए। कैलाश से लौटते हुए १९३७ ई० दूसरा भाद्र झूलन द्वादशी को अल्मोड़े में माँ की गोद में उन्होंने जीवन लीला समाप्त की। तिरोधान के कुछ दिन बाद ही मातृदर्शन का सात दिन ही में मुद्रण कराया गया। पुस्तक का मुद्रण और संशोधन वह स्वयं नहीं देख पाए। मैं भी उस ओर विशेष ध्यान नहीं दे सका। इसी कारण ग्रंथ में साधारण भूले रह गई थीं। इस संस्करण में उसे यथा सम्भव संशोधित करने की चेष्टा की गई है।

भाई जी की लिखी हुई एक और पुस्तक है जिसमें उन्होंने माँ के जीवन की अनेक कहानियाँ उन्हीं की भाषा में लिपिबद्ध की थीं। कुछ प्रसंगों का मातृदर्शन में संक्षिप्त रूप से उल्लेख किया है। भाई जी का लौकिक नाम ज्योतिशचन्द्रराय और पिता का नाम गोविन्दचन्द्रराय था, ये ऋषि लोक थे। १८८० ई० दूसरा श्रावण शुक्रवार शुक्ला दशमी को भाई जी का जन्म हुआ था।

चटगाँव के कुलीन वैद्यवंश में भाई जी का जन्म और शिक्षा दीक्षा हुई। उनका जीवन भी आरम्भ से अंत तक सुन्दर सरल और पवित्र था माँ के श्रीचरणों में सर्वस्व समर्पित करके मौनानन्द पर्वत के नाम से

संन्यास ग्रहण किया। अल्मोड़ा में उनके देहान्त से कुछ पहले की वर्णना पिता जी भोला नाथ के शब्दों ही में लिखता हूँ। *

"आखीर तक ज्योतिश को सम्पूर्ण ज्ञान था। मृत्यु से जरा पहले मुझसे बोला बाबा! देखा, इस संसार में कोई किसी का नहीं है। केवल एकमात्र माँ ही सत्य हैं।" उसके बाद "माँ" "माँ" कह प्रणव उच्चारण किया। हरिराम को बुलाकर कहा "सुनो। we are all one। माँ, मैं एक हूँ, बाबा, मैं, एक हूँ" उसके बाद तुम्हारी माँ की ओर देख 'माँ' 'माँ' कहते हुए जीवन लीला समाप्त की।"

अन्य एक भक्त ने उस समय का ऐसा वर्णन किया है।

A few minutes befor he left his body, Bhaiji asked one of us to note down "we are all one, I see mother every where ! what joy How beautiful !" When one of us asked him how it would be possible to run the Dehradun Ashram without his help and guidance, he Said, "The work is not mine but Mother's. Every thing will go on all right with Her grace; we are all tools in Her hand"...throughout his illness Mother attended on Bhaiji very tenderly. She did not sleep for nights together, she was allways seen rubbing his hands face and head with the skirt of her sari. But the Calm serenity of Her face was not disturbed. Her usual smile was always there and

---

* भाई जी के देहान्त पर बाबा भोला नाथ ने जो लम्बा पत्र मुझे तारीख ८–९–३७ को लिखा था, उसी में से उद्धृत किया गया है।

Her presence filled the room with peace and franquillty. I think this must have reduced Considerably the almost unbearable pain which the body was suffering. On his way from Kailash to Almora the companions told mother that Bhaiji would be alright if she only blessed him Mother replied that she wanted to do so but the words would not come out of the mouth. After his departure from our midst, she said that event was not unxpected one, she and Bhaiji both knew about it; He had told Her at kailash that most probably his hody would rest for ever at Almora He had also asked Her to initiate him into sannyas so that he might be free from all worldly ties. He left his body there because he had some connections with that place and with the people thereof, in his previous birth.

On the second day after his death we proposed that Mother should also go to the place where Samadhi of Bhaiji was, in order to see if the work had been done properly. Mother agreed. But half an hour before the time fixed for starting Mother passed into trance in which she remained for six days. She was removed to Dehradun in that Very Condition. It was at this place she ragained Her normal condition. She did not take

any thing but a few Sips of water for Sixteen days on the Sixteenth day a Bhandara was held there when food and Clothing was distributed to Sadhus and poor People. ※

'देह त्याग करने से कुछ मिनट पहले भाईजी ने हम में से एक को यह लिख रखने को कहा, "हम सब एक हैं। मैं माँ को सर्वत्र देख रहा हूँ! कितना सुन्दर! कितना आनन्द।" जब उनसे किसी ने यह कहा कि उनके बिना देहरादून का आश्रम कैसे चलेगा तो उन्हों ने कहा, "यह मेरा नहीं वरन् माँ का कार्य है। सब कुछ उनकी कृपा से ठीक ही होगा, हम सब तो उन्हीं के हाथ के यंत्र हैं।"

भाईजी की बीमारी में श्री माँ ने बड़े स्नेह के साथ उनकी परिचर्या की। वे रातों नहीं सोईं। अपनी साड़ी के अंचल से उनका हाथ, मुँह सिर पोंछतीं। लेकिन उनका मुखगाम्भीर्य्य तथा शान्ति सर्वदा रही। उनकी मुस्कराहट तथा मुखमण्डल की अपूर्व शान्ति और धैर्य्य रोगी के कमरे को आच्छादित किए थी। इसी के प्रभाव से भाईजी की असह्य यातना बहुत कुछ कम हो गई थी।

कैलाश से अल्मोड़ा के रास्ते में जब अन्य साथियों ने माँ से कहा, "माँ तुम्हारी कृपा होने से भाईजी रोग विमुक्त हो जावेंगे।" माँ बोलीं, "ज्योतिष अच्छा हो जाय यह तो मैं भी चाहती हूँ, किन्तु मुँह से कुछ निकल नहीं पाता है।" भाईजी की देह त्याग होने पर माँ ने कहा, "यह घटना अप्रत्याशित नहीं थीं। मैं तथा तुम्हारा भाईजी इसे पहले ही

※ Talla Dania Almora से लिखा हुआ ता० १०-९-३७ श्री निवास जोशी का पत्र।

जानते थे। वह लौटते समय मुझसे बोला था कि अल्मोड़ा में उसका देहान्त हो सकता है। उसने सन्यास देने के लिए कैलाश में मुझसे प्रार्थना की थी जिससे वह संसार के सब बन्धनों से मुक्ति पा जाए। इस जगह देहत्याग करने का कारण यही है कि पूर्व जन्म में उसका इस जगह और यहाँ के लोगों के साथ विशेष सम्बन्ध था।"

मृत्यु के बाद दूसरे दिन माँ से अनुरोध किया गया कि भाईजी की समाधि स्थान देखने माँ भी चलें। माँ राजी हो गईं किन्तु जाने के ठीक आध घण्टे पहले माँ को समाधि हो गई और ऐसी अवस्था ६ दिन तक रही। इसी अवस्था में माँ को देहरादून लाया गया। यहाँ आकर ही माँ फिर से स्वाभाविक अवस्था में आईं। श्री श्री माँ ने सोलह दिन तक भोजन नहीं किया केवल थोड़ा जल पीकर ही रहीं। फिर सोलहवें दिन एक भण्डारा किया गया जिसमें साधुओं तथा गरीबों को अन्न वस्त्रादि दिया गया।*

एकनिष्ठ भक्त के कल्याण के लिए हमारी भक्तजननी जगदम्बा का असीम वात्सल्य किस तरह प्रसारित होता है, इसका उज्ज्वल निदर्शन भाईजी की शेष लीला से मिलता है, ऐसा सुन्दर निदर्शन हमारे स्मृति पट पर अनन्तकाल तक रहेगा।

भाई जी ने ज्ञान भक्ति और कर्म साधन में अपूर्व प्रतिष्ठा लाभ की तथा जिस प्रकार उन्होंने माँ के पतित पावनी ऐश्वर्य का जगत को दर्शन कराया उसकी स्मृति श्री श्री माँ के भक्तों के हृदय में हमेशा रहेगी।

श्री गंगाचरणदास गुप्त

---

* इङ्गलिश के पत्र का हिन्दी अनुवाद।

सूची

श्री श्री माताजी

मातृ दर्शन

श्री श्री माता जी का जीवन चरित्र लिखना अथवा लोगों को आकृष्ट करने के लिए उनकी अकथनीय शक्ति का परिचय कराना इस पुस्तक का उद्देश्य नहीं है। मेरे निर्जीव मन में कैसे उन्होंने प्राणों का संचार किया इसी सम्बन्ध की कुछ घटनाओं का उल्लेखमात्र इस पुस्तक में है। जो मैंने स्वयम् देखा और अनुभव किया वही प्रसङ्ग इस पुस्तक में है। यदि इन प्रसङ्गों में मेरी अयोग्यता के कारण कुछ भाषा और वर्णनों में त्रुटी तथा अस्पष्टता रह गई है उसके लिए मैं माँ के चरणों में बार-बार क्षमा प्रार्थना करता हूँ।

बहुत छुटपन ही में मैं मातृहीन हो गया था। जैसा कि सुना है कि तभी किसी की ही 'माँ' पुकार मात्र सुन कर मेरी आँखों में पानी भर आता और कमरे के फर्श पर छाती रख हृदय की ज्वाला शान्त करता। मेरे स्वर्गीय पिता एक ऋषि पुरुष थे। उनके प्रगाढ़ धर्मानुराग के प्रभाव से बचपन हीं से सद्भावना के बीज मेरे हृदय पर जम गए। १९०८ ई० में कुलगुरु की कृपा से शक्तिमंत्र से दीक्षित हुआ। फलस्वरूप 'मा'-'मा' पुकार से शान्ति बोध करके भी कि—माँही प्राणीमात्र का सर्वस्व हैं—इससत्य का बोध नहीं हुआ। सदा ही यह आकांक्षा बनी रहती कि एक ऐसी सजीव मूर्तिमयी माँका दर्शन करूँ जिसकी गम्भीर दृष्टि से यह दुःखी हृदय स्वयं ही बदल जाए। साधु सन्तों का तो कहना ही क्या यदि कोई ज्योतिषी भी मिलता तो उससे झट पूँछ पड़ता कि 'यह सौभाग्य मुझे प्राप्त होगा क्या ?' उनमें भी कोई निराश नहीं करता।

इसी उपलक्ष्य में अनेक तीर्थों में भी परिभ्रमण किया, अनेक महात्माओं के दर्शनों का सुयोग भी हुआ किन्तु किसी ने भी इस दीनको आकर्षित नहीं किया।

१९१८ ई० में बंगाल में 'ढाका' शहर में नौकरी के लिए आया। सन् १९२४ के अन्तिम भाग में सुना कि शहर के निकट शाहबाग के बगीचे में एक माता जी ठहरी हैं। बहुत दिनों से तो मौनी हैं फिर भी कभी योगासन में बैठकर मंत्रोच्चारण कर कुण्डली दे बात चीत करती हैं। एक दिन प्रातःकाल जिसे मैं सुप्रभात

ही कहूँगा, अपनी आकुल प्रार्थना मन में रख शाहबाग गया और पिता भोलानाथ के सौजन्य से माँ के श्री चरणों के दर्शन भी प्राप्त हुए। उनकी शान्त योगावस्था तथा कुल बधू का भाव, यह दोनों का सुन्दर सम्बन्ध देख मैं आश्चर्य में पड़ गया। और यह भी लगा कि जिनकी प्रतीक्षा में इतने दिनों से बैठा हूँ, जिसकी खोज में देश विदेश फिरा वहीं आज मेरे सम्मुख है। मेरा मन और प्राण आनन्द से भर उठा शरीर रोमांचित हो उठा। इच्छा हुई कि चरणों में गिर पड़ूँ और रोकर कहूँ 'माँ इतने दिन दूर क्यों रखा ?'

कुछ देर बाद मैंने माँ से पूछा 'मेरी पारमार्थिक उन्नति की कोई आशा है ?' माँ ने कहा 'भूख तो अभी भी नहीं हैं'। यह सोचकर आया था कि कितनी ही बातें करूँगा और सुनूँगा किन्तु न मालूम किस अपूर्व कृपानुभूति से चुप हो मंत्रमुग्ध-सा हो गया। देखा कि माता जी भी चुप हैं। थोड़ी ही देर बाद हार्दिक श्रद्धा से प्रणाम कर मैंने विदा ली। चरण छूने की प्रबल इच्छा होने पर भी छू न सका, भय से अथवा किसी अशंका से नहीं किन्तु एक अव्यक्त आवेग से माँ के पास से चला आया।

शाहबाग फिर नहीं गया। सोचता कि जब तक वे अपना घूँघट हटा माँ के समान नहीं खींच लेंगी तब तक उनके चरणों को किस प्रकार हृदय में धारण करूँगा। एक ओर तो यह अभिमान दूसरी ओर दर्शन के लिए व्याकुलता द्वन्द्व-युद्ध-सा चलने

लगा, लेकिन इसी बीच में शाहबाग के निकटवर्ती सिक्खों के अखाड़े की सटी दीवार की ओट से माता जी के दो दिन दर्शन उनके अज्ञात ही में किए। मन की ऐसी अद्भुत् गति देख सोचता कि यह क्या होता जा रहा है किन्तु हिताहित समझने की कोई भी शक्ति नहीं पाता। माँ की खबर सभी रखता और बीच-बीच में उनकी लीला के अनेक प्रकार के प्रसंग सुन लेता। इस प्रकार दैनिक काम धाम की चर्चा में सात महीने कट गए। तदनन्तर एक दिन मैं माँ को अपने घर लिवा लाया। बहुत दिनों के बाद उन्हें अपने समीप देख खूब आनन्द हुआ किन्तु वह स्थायी न हो सका। विदा के समय माँ के चरण छूने के समय उन्होंने झट ही चरण हटा लिए। मुझे बड़ी व्यथा हुई।

इधर कई महीनों से अनेक शास्त्रों की आलोचना द्वारा मन को बहलाने की चेष्टा भी कर रहा था। सहसा मन में उठा कि धर्म और सदाचार के विषय में कुछ लिखकर छपवाऊँ। शीघ्र ही 'साधना' नाम की एक पुस्तक तैयार हो गई और उसकी एक प्रति भूपेन्द्र नारायणदास गुप्त द्वारा माँ के श्री चरणों में भेज दी। माँ ने उनसे कहा—'पुस्तक के रचयिता को यहाँ आने के लिए कहना।' माँ के आह्वान से प्रसन्न हो एक दिन सुबह शाहबाग जा पहुँचा। वहाँ जाकर सुना कि माँ का तीन वर्ष का मौन पूर्ण हो चुका है। वे आकर मेरे अत्यन्त निकट ही बैठ गईं। पुस्तक को आदि से अन्त तक सुनकर बोलीं—'यद्यपि मौनावस्था के बाद से अभी तक मेरा स्वर नहीं खुला है किन्तु आज स्वतः वचन निकल रहा

है। 'पुस्तक सुन्दर हुई' शुद्ध भाव वृद्धि की चेष्टा करो।'

उस दिन माँ का पवित्र सान्निध्य लाभ कर एक नवीन ही रङ्ग बाहर भीतर खिल उठा, पिता जी भी वहाँ पर उपस्थित थे। मुझे ऐसा लगा कि मैं अपने माता पिता के सामने बच्चों की भाँति बैठा हूँ। उत्साह और आनन्द से विदा ले मैं घर लौट आया।

इसके बाद ही से शाहबाग आना जाना मैंने प्रारम्भ कर दिया। एक दिन मैंने अपनी पत्नी से भी कहा तुम भी कुछ द्रव्यादि ले माँ के दर्शन कर आओ। उन दिनों माँ नाक में लौंग भी पहनती थीं। पाँच सात दिन बाद ही मेरी पत्नी ने हीरे की लौंग, चाँदी की थाली, दही फूल आदि सामग्री माँ के चरणों में अर्पण करने का सौभाग्य प्राप्त किया। पीछे मालूम हुआ कि माता जी इधर कई महीनों से जमीन पर ही भोजन रखकर खाने लगी थीं तब पिता जी ने विरक्ति से कहा था "पीतल की थाली में नहीं खाओगी,—काँसे की थाली में नहीं खाओगी फिर क्या चाँदी की थाली में खाओगी ?" माँ ने हँसते-हँसते कहा था, 'मैं चाँदी की थाली ही में खाऊँगी किन्तु तीन महीने तक इसके सम्बन्ध में किसी से कह भी नहीं सकोगे और स्वयम् भी चाँदी की थाली का बन्दोवस्त नहीं करना। वास्तव में तीन मास बीतने के पहले ही चाँदी की थाली माँ के दरबार में उपस्थित हो गई।

एक दिन माँ ने मुझसे कहा 'तुम सदा यह स्मरण रखना कि तुम वास्तविक ब्राह्मण हो तुम्हारे साथ भगवद्भावरूपी अतीव

सूक्ष्म सूत्र से इस शरीर का योग रहा है।' उस दिन से मैं सब प्रकार से अपने को सदाचार में सुसंयत रखने की चेष्टा करने लगा।

मैं बहुतों को यह कहते सुनता था कि उन लोगों को स्वप्न में अथवा प्रत्यक्ष में माताजी के अनेक अलौकिक मूर्ति दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। माताजी की साधारण मूर्ति से ही महती शक्ति का अभूतपूर्व विकास मुझे दृष्टिगत हो चुका था अतएव कुछ असाधारण मूर्ति देखने की विशेष उत्कण्ठा नहीं हुई। सोचता कि यदि उनके व्यवहारिक धैर्य और नैतिक आदर्श में ही अपने को गठित कर सकूँ तो यही मेरे लिए बहुत है। किन्तु जड़ता का संस्कार मुझे अधीर कर इधर उधर भटकाता रहा। इसी लिए एक दिन माँ को एकान्त में पाकर जिज्ञासा की—'माँ! सचमुच में आप कौन हैं, बतलाइये तो?" माँ ने हँसते-हँसते कहा—"बालकों की तरह यह प्रश्न कैसे उठा? जीवों को अपने संस्कार के अनुसार देवी देवताओं के दर्शन होते हैं। मैं पहले जो थी, आज भी वही हूँ आगे भी वही रहूँगी। तुम जिस समय जो कहो, जो सोचो वही मैं हूँ। फिर भी यह सच कर जानना कि इस शरीर का जन्म प्रारब्ध भोग के लिए नहीं हुआ है, तुम यही समझना कि यह शरीर भावों का मूर्तिमान स्वरूप है, तुमने इसकी अभिलाषा की और इसीलिए पाया अथवा तुमने चाहा इसीलिए पाया भी अब इसके साथ समयानुसार लीला करते चलो और अधिक जान कर क्या होगा" मैंने कहा "माँ इस कथन से तो सन्तोष हुआ

नहीं !" यह सुनते ही "और क्या जानना चाहता है बता बता" कहते ही उनके मुख और नेत्रों में एक दैवी भाव दिखाई दिया। मैं भय और विस्मय से चुप हो गया।

पन्द्रह दिन बाद बहुत तड़के शाहबाग जाकर मैंने देखा कि माँ के शयनगृह का दरवाजा बन्द है। मैं दरवाजे के ठीक सामने ५०, ६० हाथ की दूरी पर बैठा था कि सहसा दरवाजा खुल गया। देखता हूँ कि बाल अरुणवर्ण वाली सौन्दर्यशालिनी द्विभुजा सौम्या देवीमूर्ति कमरे को आलोकित कर खड़ी है। आँख का पलक भी न गिरने पाया कि फिर ठीक उसी स्थान पर मैंने माँ को देखा, तभी ज्ञात हुआ कि माँ ने पूर्वोक्त अपनी दैवीप्रतिभा शरीर ही में संवरण कर ली थी।

एक निमेषमात्र में जादूगर का खेल सा हो गया। मैं मानो किसी स्वप्नराज्य से लौट कर आया। तभी मन में यह विचार उठा कि मेरे उस दिन के प्रश्न के उत्तर स्वरूप माँ ने आज मुझे जना दिया है कि 'मैं कौन हूँ'। मैं एक स्तोत्र को दुहराता हुआ प्रार्थना करने लगा कि इस शुभमुहूर्त में सन्तान की तरह यदि माँ का आशीर्वाद या कृपालाभ प्राप्त कर सकूँ। कुछ देर बाद माँ ने स्वाभाविक गति से मेरी ओर आते हुए मैदान से एक फूल और कई एक द्रवके हरे तिनके हाथ में ले लिए और नमस्कार करते समय उन्होंने वह सब मेरे सिर पर रख दिये।

मैं आत्मविभोर सा हो माँ के श्रीचरणों पर अश्रुधारा बहाता

हुआ गिर पड़ा। जो दिन जाता है वह फिर लौटता नहीं किन्तु आग्रह यही रहता है कि वह फिर आए।

तब से मेरे मन में यह बात समा गई कि ये केवल मेरी ही माँ नहीं वरन् संसार की माँ हैं। फिर मैं घर लौट आया। मन तनिक एकाग्र होते ही माँ की मुखछटा आँखों में उतर आती और झरझर कर अश्रुपात होने लगता। उस दिन की भावविभोरता ने मेरे हृदय में ऐसा प्रकृत प्रभाव डाला कि वे अपनी इस मनुष्य देहही में मेरी अठारह वर्षों की नित्य ध्येया चतुर्भुज मूर्ति के स्थान पर अधिकार कर अनायास ही आ बैठीं। इस प्रकार परिवर्तन के कारण उपासना के समय पूर्व संस्कार के प्रबल होने पर कभी कभी भयभीत हो सोचता कि मैं क्या कर रहा हूँ। किन्तु थोड़े ही दिनों में माँ मेरे चित्त में दृढ़ता पूर्वक प्रतिष्ठित हो गई।

---

*श्री श्री माँ आनन्दमयी (जन्म का नाम श्रीयुक्ता निर्मला देवी) १८१८ शक (वंगला १३०३ सन् १९ बैशाख) १८९६ ई० ३० अप्रैल वृहस्पतिवार रात्रि तीन दण्ड शेष रहने पर त्रिपुरा जिला के अन्तर्गत खेओड़ा ग्राम में मनुष्य देह में अवतीर्ण हुईं। श्री श्री माँ ने जिस स्थान में जन्म लिया था, वह कालक्रम से लुप्त होने ही को था कि ३ ज्येष्ठ १३४४ बँगला संवत्सर में (१७ मई १९३७ ई० में) जब माता जी खेओड़ा गईं तब भक्तों के अनुरोध करने पर उन्होंने जिस स्थान पर जन्म ग्रहण किया था वह स्वयम् ही बतला दिया। उनके पिता श्रीयुत विपिनविहारी भट्टाचार्य्य उसी जिले के विद्याकूट ग्राम के प्रसिद्ध काश्यप वंश के वंशधर थे। उन्होंने अपना आरम्भिक
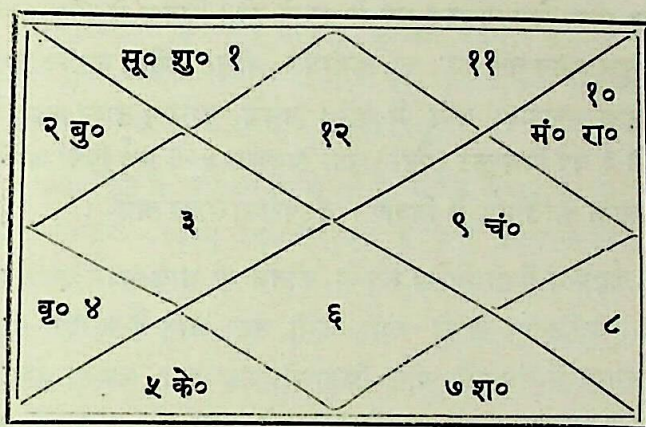
खेओड़ा और सुलतान पुर ही में माँ के बाल्यकाल के थोड़े ही

जीवन ननिहाल ही में बिताया था। श्री श्री माता जी के पिता और माता श्रीयुक्ता मोक्षदा सुन्दरी दोनों ही का स्वभाव मधुर था। उनको यदि धर्मनिष्ठा, सदाचार और सरलता का आदर्श कहा जाए तो भी अनुचित न होगा। माता जी के ननिहाल का वंश भी अति प्राचीन तथा सम्भ्रान्त था। इस परिवार में कई एक पण्डित तथा साधक भी हो गए थे, एवं एक धर्मपरायण कुलबधू ने आनन्द के साथ हरिस्मरण करते हुए मृतपति के साथ चिता पर भो अनुगमन किया था। माता जी के पिता के ननिहाल में भी एक सती हुई थी ऐसी भी एक किंवदन्तो है। ढाका जिले के विक्रमपुरस्थ आटपाड़ा ग्राम के श्रीयुत रमनीमोहन चक्रवर्ती के साथ १२ वर्ष १० महीने की आयु में माता जी का विवाह हुआ। वे भी उस ग्राम के प्रसिद्ध भरद्वाज वंश के वंशधर हैं। दूसरों की मङ्गलकामना करना ही उनका एकमात्र व्रत है। वे भोलानाथ एवं पश्चिम देश में रमा पागल के नाम से प्रसिद्ध हैं।

बहुत लीला खेल अलच्य रूप से चलते रहे। विवाह के बाद माता जी कुछ समय तक जेठ का कर्मस्थल श्रीपुर और नरुन्दि तथा ससुराल आटपाड़ा ग्राम में रहीं। उसके पश्चात् ढाका आने के पहले ३ वर्ष विद्याकूट (नैहर) तथा लगभग ५-६ वर्ष पिता जी के कर्मस्थान बाजितपुर में बिताए। तदुपरान्त ढाका आईं।

अष्टग्राम में ही विशेष रूप से कीर्तन का भाव प्रथम प्रकाशित हुआ। बाजितपुर में भी कभी कभी उक्त भाव देखा गया था। बाजितपुर में मंत्र और योग क्रियाओं का प्रकृत प्रकाश हुआ। बाद में शाहबाग आने पर मौनावस्था के साथ-साथ जीवन में एक महान् शान्तभाव का प्रकाश देखा गया। इसकी भाषा द्वारा वर्णना नहीं की जा सकती है कितनी ही आध्यात्मिक वाणियाँ और दैवीभाव की लीलाएँ इस समय प्रकट हुई।

तभी से बहुत से भक्तों का समागम रहने लगा। बहुत से ही पूजा कीर्तन और यज्ञ आदि में सहयोग देकर कृतार्थ हुए। इसी उपलच में भक्तों के हृदय में कितने शान्तभाव का संचार हुआ वह कहा नहीं जा सकता। तब से ही सभी माँ को शाहबाग की माँ कहते और कभी जोश के साथ कहते कि माँ का ऐसा ऐश्वर्य और नहीं दीखेगा।

बाजितपुर में रहते समय ढाका में स्थित सिद्धेश्वरी काली मन्दिर का चित्र माँ के नेत्रों में ही रहा, ढाका आकर ही माँ ने सिद्धेश्वरी के आसन का पुनरुद्धार किया।

उस समय श्रीयुत प्राण गोपाल मुकर्जी वर्तमान अवसर प्राप्त डिपुटी पोस्ट मास्टर जनरल ढाका में थे। उन्होंने और वाउलचन्द्र वसाक ने इस स्थान के संरक्षण की व्यवस्था की।

पहले दिन के साक्षात ही में माँ ने संकेत किया था कि 'भूख होनी चाहिये'। किन्तु विषयवासना में फँसे प्राणी के लिये यह भूख होनी ही कठिन है जब तक कि हृदय की उद्दाम तरंगे उन्हीं के चरणों में जाकर शान्त न हो जायें। इसीलिए सदैव ही मन ही मन प्रार्थना करता कि माँ मूर्तिमयी क्षुधा तो तुम्हीं हो भूख दो।' किस प्रकार माँ ने अनेक लीला रहस्यों द्वारा अपनी अहेतुकी कृपा का प्रकाशन कर मेरे चंचल लक्ष्य को अपनी विराट सत्ता की ओर अभिमुख किया, इस सम्बन्ध की कई एक घटनाओं का संक्षेप में उल्लेख करता हूँ।

(१) एक दिन रात को मैं अपने घर में खुले बरामदे में टहल रहा था, सारा संसार चाँदनी से आवृत हो जगमगा रहा था, मैंने मुँह घुमाते ही देखा कि माँ मेरे साथ छायामूर्ति की तरह चल रही है। उनके वदन पर लाल जम्पर और लाल चौड़े किनारे की साड़ी थी। मैं कुछ घण्टे पहले माँ को आश्रम में सफेद जम्पर और लाल सादी किनारी की साड़ी पहने घुमते देख आया था। दूसरे दिन सुबह जाने पर माँ को वही दोनों चीज पहने देखा और यह भी पता लगा कि मेरे चले आने के बाद किसी ने उनको यह पोशाक पहिनाई थी।

माँ ने सुनकर कहा, "मैं देखने गई थी कि तुम क्या कर रहे थे।"

(२) एक दिन माँ मेरे घर आईं, दोतले में बैठकर बातचीत कर रही थीं। इतने में माँ को कहीं और ले जाने के लिए एक मोटर आई। पहले ही से वहाँ जाने की बात थी, लेकिन मैं इस-बात से सर्वथा अनभिज्ञ था। माँ जाने के लिए प्रस्तुत हुईं, मुझे बहुत ही बुरा लग रहा था। भारीमन लिए माँ को मोटर पर बिठाने के लिये नीचे उतरा। माँ मोटर में बैठ गईं किन्तु मोटर चली नहीं। माँ मेरी ओर देख देख कर हँस रही थीं कोशिश करने पर भी मोटर न चलती देख एक किराए की घोड़ा गाड़ी लाई गई। यह देख मुझे दुःख हुआ कि मोटर के रहते हुए भी माँ घोड़ा गाड़ी से जावें सो क्यों! इसी समय मोटर से आवाज हुई और माँ फिर मोटर ही में गईं।

(३) शाहबाग में धीरे धीरे लोगों की खूब भीड़ होने लगी। एक बार चार दिन तक वहाँ जाकर भी माँ के साथ बात-चीत न कर सका। पाँचवें दिन जाने का इरादा करके भी मन खराब होने के कारण नहीं गया, हताश हो बैठा रहा। देखा कि बाइस्कोप की तरह माँ की मूर्ति दीवार पर अङ्कित है। उनकी मुखश्री गम्भीर थी। पीछे फिर कर देखा कि श्री अमूल्यरतन चौधुरी कुर्सी पकड़े खड़े हैं। उन्होंने कहा, आपको लिवा ले जाने के लिए माँ ने गाड़ी भेजी है शाहबाग जाते ही माँ ने कहा, इधर कई दिनों से तुझ में अस्थिरता देख रही हूँ। अस्थिरता

आए बिना स्थिरता भी नहीं आती। घी से हो, चन्दन काठ से हो यहाँ तक कि घासफूस से भी, किसी भी तरह आग जलाने की आवश्यकता हो, अग्नि एक बार जल उठने पर फिर भावना नहीं रहती है, सब भस्म कर ही देगी। देखा है न। एक चिनगारी ही कितने परिश्रम के बने मकान को पल भर ही में भस्म कर देती है।

(४) अर्द्धरात्रि में घर में या कभी दोपहर में आफिस में बैठा हूँ, एकाएक माँ को देखने की उत्कट अभिलाषा और अस्थिरता जग उठी। अनेक दिन माँ उसी समय और उसी स्थान पर उपस्थित हो बोली हैं 'तूने पुकारा था, इसीलिये आई हूँ।'

(५) एक दिन शाम को आफिस से लौट आने पर मैंने सुना कि कोई आदमी १२ बजे एक बड़ी मछली हमारे घर में रख फिर आने को कहकर चला गया। उसके बाद फिर वह देखने में नहीं आया। मछली पड़ी ही थी। जब शाम तक कोई भी नहीं आया तो उसके टुकड़े-टुकड़े कर शाहबाग भेज दिए। दूसरे दिन सुबह शाहबाग पहुँचते ही पिता जी ने कहा तुम्हारी माँ कल रात हँसते हँसते कह रही थी कि "ज्योतिष तो हमारा भगवान ही है।" कल सुबह यहाँ कुछ भक्तों ने प्रसाद पाया था, शाम को जो कीर्तन करने के लिए आए थे उन्होंने भी सुबह के प्रसाद की बात जान प्रसाद के लिए आग्रह किया। घर में उस समय कुछ नहीं था किन्तु तुम्हारी माँ ने मसाला आदि ठीक कर रखा था उसी समय तुम्हारा नौकर खगा मछली ले आया। इसीलिये तुम्हारी माँ ने ऐसा कहा। मैं तो अवाक् हो गया, कहाँ से कौन

व्यक्ति मेरे घर मछली रख गया और उसी से शाहबाग में भक्तों की परितृप्ति हुई।

इस प्रकार की और भी बहुत सी घटनाएँ हुईं। शाहबाग में कोई माँ के पास प्रसाद के लिए बैठा है और उसे देने के लिए कोई वस्तु नहीं है। इधर ठीक उसी समय मिठाई व फल आदि कुछ भेजने के लिये मेरा मन व्याकुल हो उठता। आदमी उसे शाहबाग ले जाकर देखता कि माँ मानों उसी की प्रतीक्षा में बैठी हैं।

(६) एक दिन रात के तीन बजे मैं अपने घर में बैठा क्या देखता हूँ कि माँ बिछौने में जिस ओर सिर करके बैठी थीं ठीक उसकी विपरीत दिशा में उनका सिरहाना था। सुबह जाकर माँ को उसी रूप में देखा। पूछने पर पता चला कि माँ शेषरात्रि बाहर गईं थी और तभी से इधर सिरहाना है।

मैं अपने घर में या आफिस में से भी यह जान लेता था कि माँ कहाँ और किस अवस्था में है, यह इच्छा करके जान लेता था सो बात नहीं। अपने आप कभी कभी आँखों के सम्मुख ये सब चित्र खिंच जाते थे भूपेन तब रोज ही शाहबाग जाया करता था, उसको बता कर ही मैं अपने दर्शन की सत्यता प्रमाणित करता था। कभी साधारण अन्तर हो जाता था। माँ कहतीं 'तेरा घर तो शाहबाग ही है, अपने घर तो केवल घूमने ही जाता है।'

(७) एक दिन बारह बजे के समय आफिस में काम कर रहा

था। भूपेन ने आकर कहा—'माँ ने आपको शाहबाग बुलाया है यह बात मैंने माँ को बता दी है कि आज बड़े साहब छुट्टी से लौट अपना चार्ज लेंगे।' माँ ने कहा 'जिसकी बात है उससे जाकर कहो वह जो चाहे सो करे।' बिना कुछ शंका करे कागज पत्रों को वैसा ही छोड़े, बिना किसी से कहे सुने शाहबाग जा पहुँचा। माँ ने कहा 'सिद्धेश्वरी आसन में चलो।' पिता जी, माँ और मैं वहाँ गए। जिस स्थान पर अब स्तम्भ और शिवलिंग है, वहाँ उन दिनों एक कुण्ड था, उसमें माँ जा बैठी। माँ का खूब हास्योन्मुख भाव था आनन्दमयी मूर्ति का प्रतिरूप था। सहसा मैं पिता जी से बोला 'माँ को हम सब श्री श्री माँ आनन्दमयी कहेंगे।' वे बोले 'अच्छा ऐसा ही होगा।' माँ स्थिर दृष्टि से कुछ देर तक मेरी ओर देखती रहीं।

लगभग साढ़े पाँच बजे हम लौटे, माँ ने मुझ से पूछा 'अब तक तो तुम प्रसन्न थे, अब देख रही हूँ कि चेहरे का रङ्ग कुछ बदल रहा है।' मैंने कहा 'घर की ओर मुँह करने से ही आफिस को बात याद आ रही है' माँ ने कहा 'कोई चिन्ता की वात नहीं।' दूसरे दिन आफिस जाने पर बड़े साहब ने भी उस दिन की बात नहीं उठायी।

मैंने माँ से पूछा, 'ऐसी अवस्था में माँ! आपने क्यों बुला भेजा?' माँ ने कहा 'देखा कि इतने महीनों में कहाँ पहुँचे हो। और सिद्धेश्वरी न जाते तो इस शरीर का नामकरण कैसे होता।' यह कहकर वे खूब हँसने लगीं।

(७) एक बार गवर्नर ढाका आए। बड़े साहब ने मुझसे कहा "कल दस बजे गवर्नर के साथ हमारे मिलने की बात है। मैं आफिस होता हुआ जाऊँगा, तुम साढ़े नौ बजे आफिस में आ तो सकोगे ?" मैंने कहा 'अवश्य, मुझे दूसरे दिन शाहबाग से लौट कर आने में देरी हो गई और आफिस में पहुँचते-पहुँचते नौ बजकर पचास मिनट हो गए।' मन ही मन सोच रहा था कि साहब से क्या कहूँगा। इसी समय साहब ने अपने बंगले से फोन किया 'मेरी मोटर खराब हो गई है, तुम्हें व्यर्थ ही में कष्ट दिया इसके लिये मुझे दुःख है। मैं ग्यारह बजे लाट साहब के निवास स्थान पर ही जाऊँगा।'

माँ ने सुन कर कहा, 'इसमें नई बात क्या है ? तूने ही तो उस दिन मेरी मोटर बिगाड़ दी थी।'

(८) एक दिन माँ हमारे घर आईं। बातों ही बातों में मैंने कहा 'माँ ! आपके लिये तो ठण्डे गरम का कुछ भेद है नहीं। एक जलता अंगारा पैर पर गिर पड़े तो आपको उससे दर्द तो नहीं होगा ?' माँ ने कहा 'डालकर ही क्यों नहीं देख लेता है।' मैंने और बात नहीं बढ़ाई। कई दिनों के बाद माँ ने उसी चर्चा के फलस्वरूप एक अंगारा स्वयम् ही अपने पैर पर रख लिया। जले हुए स्थान पर घाव दिखाई देने लगा। लगभग एक महीना हो चला किन्तु घाव सूखा नहीं। मुझे स्वयम् अपनी मूर्खता पर बड़ा दुःख हुआ। एक दिन माँ के पास जा मैंने देखा कि वे दोनों पैर पसार कर बरामदे में एकाग्र दृष्टि से बैठी हैं। मैंने प्रणाम कर उस

घाव की पीब मुँह से चूस ली। उसके दूसरे दिन से ही घाव सूखने लगा।

इसी सम्बन्ध में पीछे मैंने पूछा—"माँ, जब अंगारा मांस के ऊपर रखा तो कैसा लगा ?" माँ ने कहा "लगने के बारे में तो कुछ कह नहीं सकती, यह तो ऐसे ही खेल था। मैं तो अंगारे का काम बड़े आनन्द से देख रही थी। पहले तो देखा कि रोम जल गए फिर चमड़ा जलने लगा तो एक प्रकार की गन्ध आई। बाद में तो जलता हुआ कोयला अपना काम शेष कर बुझ गया। जब घाव हुआ तो अपने स्वाभाविक रूप में रहता ही गया, जब तेरी ही तीव्र इच्छा हुई कि घाव भर उठे तो घाव सूखने लगा।"

(९) माघ का महीना और जोरों का जाड़ा था। माँ के साथ खूब सुबह ही नंगे पैर रमना के भीगे मैदान में घूम रहा था। दूर से देखा एक स्त्री-दल चला आ रहा है। मेरे मन में यह विचार उठा कि ये लोग आते ही माँ को आश्रम में ले जायेंगी। यही सोच रहा था कि उसी समय सारा मैदान घने कुहरे से आच्छन्न हो गया, और दर्शनार्थियों का दल और दिखाई न दिया। दो तीन घण्टे के बाद जब हम लोग आश्रम लौटे तो 'सुना कि वे लोग मैदान में खोजते खोजते हैरान होकर लौट गईं। मैदान खूब बड़ा था। यह प्रसंग माँ को बताने पर माँ ने कहा, "तेरी तीव्र इच्छा ही पूर्ण हुई।"

(१०) एक बार माँ को खूब सर्दी और खाँसी हो गई। मैं यह देख बड़े ही कातर भाव से बोला 'माँ! जल्दी ही अच्छी हो

उठिए।' माँ ने मेरी ओर ताकते हुए हँसते हँसते कहा, "अच्छा कल से ही अच्छी होने लगूँगी।" और वही हुआ।

(११) एक दिन सुबह जाकर देखता हूँ, कि माँ को ज्वर है। मैंने उस रात कमरे में बैठ एकाग्र मन से माँ के निकट प्रार्थना की कि उनकी बीमारी मुझे हो जाय। शेष रात्रि में सचमुच ही मुझे ज्वर तथा माथे में दर्द होने लगा। प्रातःकाल माँ के समीप पहुँचते न पहुँचते ही माँ बोलीं, "मैं तो अच्छी हो गई किन्तु तुझे ज्वर हो गया। घर जाकर स्नानादि कर भली प्रकार खाना खाना।" मैंने वैसा ही किया और शाम ही से मेरा शरीर अच्छा होने लगा।

माँ बोलीं "शुद्ध अनन्य भाव होने से सब ही सम्भव है।"

(१२) मेरे हाथ एक 'साधु जीवनी' पुस्तक आ पहुंची। उसमें एक जगह एक उक्ति थी, "वे दरिद्र को अन्न दान करने के लिए सर्वदा अपने भक्तों को उपदेश करते हैं।" इस उक्ति के पास ही एक नोट मैंने लिख रखा था। "केवल अन्नदान से ही तृप्ति साधन नहीं होता है।" घटनाक्रम से यह पुस्तक शाहबाग जा पहुँची और मेरा मन्तव्य भी माँ के कान में जा पड़ा। इसके कई दिन बाद मैं सुबह शाहबाग गया। एक आदमी पागल सा माँ से आकर बोला, "मुझे कुछ खाने को दो, नहीं तो मेरे प्राण नहीं बचेंगे।" यह सुन माँ ने रसोईघर तथा भण्डार घर में जो कुछ पाया वह उसको दे दिया। उस आदमी के पानी माँगने पर माँ ने मुझसे कहा, "इसे पानी दे दो।" पानी देते समय मुझे पता लगा कि यह मुसलमान है तथा तीन दिन से उसे खाना नहीं मिला था। उस

दिन भूख प्यास की असहनीय ज्वाला से विकल होकर बगीचे की दीवार फाँद कर आया था। माँ ने मुझसे कहा, "देखा, अन्नदान भी कितना आवश्यक है। यह आदमी तेरी भूल बताने ही के लिए आया था। पात्र और समय के अनुसार सब कुछ ही जरूरी है। इस जगत में कुछ भी व्यर्थ नहीं होता है।

(१३) एक दिन मैंने माँ से कहा "माँ आज कल मेरा खूब नाम स्मरण हो रहा है।" तब समय समय पर मध्यरात्रि में मेरा नाम आप-से-आप होने लगता था माँ के साथ यह बात कहते समय खुशी के साथ अहंकार का भी लेश था। माँ मेरे मुँह की ओर देखती रही। विशेष कुछ बोली नहीं। घर आकर अनुभव किया कि चेष्टा करनेपर भी नामजप नहीं हो रहा है दिन गया और रात भी बीत गई किन्तु नाम का प्रवाह आप से आप बन्द हो गया। दूसरे दिन सुबह भूपेन से कहा "माँ से इस बारे में कहना तो।" भूपेन ने जाते समय रास्ते में माँ को गाड़ी पर जाते हुए देख मेरी दुर्दशा की कहानी बता दी। माँ जोर से हँसने लगी। उस समय दस बजे थे। इधर ठीक उसी समय मेरे भीतर नाम आप से आप प्रवाहित होने लगा। पीछे मुझे ज्ञात हुआ कि भूपेन के साथ माँ की भेंट कब हुई।

इस प्रसंग में माँ ने बताया था कि धर्मपथ में किंचित अहं-कार की छाया भी लक्ष्य को अच्छादित कर देती है।

(१४) श्री श्री माँ का प्रभाव अदृश्य रूप से किस प्रकार हमारे

हृदय में तुरन्त ही असर करता है इसका एक दृष्टान्त देता हूँ। हम उस कृपा को अपनी कर पकड़ नहीं पाते हैं इसी लिए जो थे वही रहते हैं। एक दिन माँ ने हँसते हँसते कहा था, "नाम करते करते चित्त शुद्ध होता है, बाद में श्रद्धा और भक्ति का अविर्भाव होने पर भाव शुद्ध हो जाता है, भाव शुद्ध होने पर अनेक प्रकार की उच्च उच्च अवस्थाओं का आभास होने लगता है और वही कार्य पूर्ण कर देता है" जिस दिन माँ की यह वाणी मेरे कानों में पड़ी, उसी दिन संध्या समय एकान्त में बैठ अनुभव किया कि नाम करने में अपूर्व आनन्द का भास हो रहा है। नाम मानो अविच्छिन्न गति से एकसूत्र हो चल रहा है। रात में सोया और जैसे ही नींद टूटी तो देखा कि नाम की धारा पूर्ववत् चल रही है। दूसरे दिन अनेक प्रकार के झंझटों में इस भाव का प्रवाह घटता बढ़ता रहा। किन्तु साँझ को जैसे ही उसी भाव से आसन पर बैठा कि पहले दिन की भांति आनन्द जग उठा, रात में और नींद नहीं आयी। मध्यरात्रि में कभी कभी तो ऐसा लगता कि नाम जब तक बन्द नहीं होगा तब तक मुझे चैन नहीं मिलेगी। मैंने पहले कभी भी गोमुख आसन नहीं किया था किन्तु उस दिन शेष रात्रि अपने आप ही उस प्रकार का आसन हो गया। उस समय शरीर और मन एक अवर्णनीय आनन्द में शराबोर हो उठा। नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बह निकली। मैं अचल, अटल होकर एक ध्यान में बहुत देर तक बैठा रहा।

माँ ने सुनकर कहा, "यह तो शहद की एक बूँद का आस्वा-

दन मात्र हुआ है, अब सोच ले कि एक मधु के छत्ते में कितनी मिठास होगी।"

(१५) माँ के श्रीचरणों में शरणागति की प्रथमावस्था में एक दिन प्रातःकाल चुप चाप बैठा था। हृदय गम्भीर उच्छ्वास-मय था। रोते रोते यह गान स्वतः निसृत होने लगा—

तुम्हारी साधना तुम्हारी बंदना।
होवे मेरा जीवन सम्बल।
तुम्हारी स्तुति भाव अनुभाव में।
होवे मेरा हृदय उज्ज्वल।
तुम्हारी खोज में आकाश की ओर।
अनिमेष दृष्टि से मैं देखूँ
मागूँगा नहीं कुछ कहूँगा भी कुछ नहीं।
चरणों में गिराऊँगा केवल अश्रुजल।
तुम्हारे असीमत्व में घूमूँगा फिरूँगा।
गाने को केवल तुम्हारी महिमा।
तुम्हारे आनन्द में रहूँगा सदानन्द।
लेकर तेरे नाम की तरंग।
मेरे सब कर्म सब धर्म।
तेरी अर्चना ही के लिए।
ओ माँ ! शुद्ध भक्ति, विश्वास दो।
सुन्दर चरणों को करें सम्बल।

इस गाने का शीर्षक 'पागल का गाना' रख इसकी एक प्रति

लिपि मैंने माँ की सेवा में भेज दी। सुना कि माँ उस समय हँसिया ले लौकी काट रही थीं। गाने के पद सुनते सुनते उनके हाथ से लौकी गिर पड़ी, एक विचित्र भाव से कुछ देर के लिए स्थिर भी हो गईं।

पीछे मेरे साथ भेंट होने पर माँ ने कहा, "जगत भावमय है, सृष्टि की सभी वस्तुएँ भावों का प्रतिरूप हैं (मूर्त रूप हैं) भावों के द्वारा यदि स्वयम् जाग्रत और उन्नत कर सकता है तो देखोगे कि ब्रह्माण्ड में सब जगह ही एक प्रकार की लीला हो रही है। भाव के अभाव ही में मनुष्य इधर उधर कुछ खोजता है, और यथार्थ तत्त्व नहीं जान पाता है।"

इसके वाद एक दिन सिद्धेश्वरी आसन पर हम सब बैठे थे। माँ ने हठात् कहा, "अपने 'पागल का गान' तो गा।" गाने का अभ्यास बहुत दिनों से नहीं रहा था, और फिर वहाँ आदमी काफी थे मैं दुविधा में पड़ गया। माँ ने हँसते हँसते कहा, "पागल का गान लिखा मात्र ही है, अभी तक पागल हो नहीं सके।" माँ की बात ने हृदय को प्रायः विदीर्ण सा कर दिया और मैंने जल्दी ही वहाँ गाना गाया।

इस प्रकार माँ को उपलक्ष्य करके अनेक गानों की रचना हुई और वे सब माँ के चरणों में निवेदन होने पर माँ कभी कभी खूब प्रसन्न होती थीं अथवा कभी बिल्कुल चुप भी हो जाया करतीं थीं। ऐसा भी बहुत समय हुआ कि जब माँ ढाका में नहीं हैं और मैं एकान्त में अपने कमरे में सन्ध्या और रात्रि में गान करने

लगेला तो देखता कि माँ स्थिर मूर्ति भाव लिए खड़ी हैं। कभी कभी घूम फिर कर ढाका लौट आने पर माँ कहतीं—"उस दिन जो गाना तुम गा रहे थे, उसे अभी गाओ तो।" यद्यपि तब तक वह गाना माँ को दिखाया भी नहीं गया था तथा कोई चर्चा भी नहीं उठी थी।

माँ के दर्शनों की उत्कट व्याकुलता कभी एकमुखी हो मुझे असीम में डुबा देती थी। इस प्रकार की अवस्था में भीतर से जिन गानों की रचना हुई है, उन्हें 'श्रीचरणों में' इस नाम की पुस्तक में छपवा दिए।

इसके अलावा कितने गाने कितनी ही कविताएँ कितने प्रवन्ध माँ के निमित्त लिखे और फाड़े उनकी गिनती नहीं है। माँ ने एक दिन यह सुनकर बोला था 'केवल इसी जन्म में क्यों ना जाने पूर्व कितने जन्मों में भी कितने फाड़े होंगे इसका भी कोई ठिकाना है? लेकिन इतना जान लेना कि इतनी फाड़ फूड़ में ही बस अब तुम्हारा अन्त है।'

उपर्युक्त बहुमुखी कृपा का प्रत्यक्ष प्रभाव यह हुआ कि भूख तो अवश्य लगी किन्तु दूषित जीभ के रस और सुस्वादु भोजन का परित्याग न कर कटु और रूखे सूखे आहार के लिए ही लालायित रहने लगी। वैष्णव ग्रन्थों में देखा जाता है :—

"जीभ के खातिर जो इधर उधर दौड़ता
ऐसा चाटुकार ओ पेटू कृष्ण नहीं पाता"

मेरी अवस्था भी वही हुई। माँ की अपार दया और अचिन्त-नीय स्नेह ने भी मुझे उनके चरणों में सदा के लिए बँध जाने नहीं दिया। अज्ञान जीव के लिए नित्य भाव में स्थिर होना कठिन है। माँ से एक दिन कहा "आपका जैसा आश्रय पाकर पत्थर भी शायद सोना हो जाता किन्तु मेरा तो कुछ भी नहीं हो पाया।" माँ ने कहा "जो वस्तु तैयार होने में जितना अधिक समय लेती है वह उतनी ही मजबूत और सुन्दर होती है। तू इतना सोचता क्यों है केवल बालक की तरह हाथ पकड़े रह।" कितनी गम्भीर वाणी तथा उपदेश सतृष्ण हृदय से सुनता किन्तु फिर भी प्यासा रहता। मेरी सब दुर्दशा के अन्दर माँ की दृष्टि कितनी अटूट रहती उसका एक उदाहरण नीचे उद्धृत करता हूँ :—

माँ का कृपाप्रार्थी हो उनके दर्शनों के प्रेम से जब मैं वहाँ रोज आने जाने लगा, तब बहुत से लोग कुछ कुछ कहने लगे। ऐसी समालोचना सुन मैंने विचार किया। सदा इधर उधर दौड़ना चित्त की दुर्बलता के सिवा और कुछ नहीं है।

'योगवशिष्ठ' का पाठ करके विचार के मार्ग की ओर अग्र-सर होऊँगा, ऐसा संकल्प कर मैंने ७–८ दिन उसमें मन लगाया। एक दिन दोपहर मैं जब कि मैं घर ही था खगा ने आकर सूचना दी कि एक वृद्ध ब्राह्मण (विक्रमपुर अन्तर्गत गाउदिया गाँव के श्रीयुक्त कालीकुमार मुखोपाध्याय) पाँच मिनट के लिए आप से मिलना चाहते हैं। उनसे मिलने पर उन्होंने कहा 'मैं निरंजन

बाबू और शशांक बाबू (पूज्य स्वामी अखण्डानन्द जी) के घर गया था, उनको घर पर न पाकर आपको तंग करने के लिए आया हूँ। सुना है कि आप माँ आनन्दमयी के भक्त हैं। माँ कैसी हैं उनका विशेषत्व क्या है ? ये प्रश्न सुनते ही मेरी आँखों में आँसू भर आए मैं गूँगा सा हो गया। वे बोल उठे "मैंने जबाब पा लिया लेकिन जरा बताइये तो आप रोए क्यों ?" मैंने कहा 'इधर कुछ दिनों से माँ की चिन्ता छोड़ मैं अन्य-विषयों में मस्त था, और आप मेरे पास माँ की खोज के लिए आए हैं मैं लज्जा और दुःख से मरा जा रहा हूँ। माँ की अद्भुत लीला है ! आपने उपयुक्त समय पर आकर मुझे निर्दिष्ट पथ की ओर लौटा दिया है, आप के निकट चिरऋणी रहा।" उन्होंने कहा 'मुझे इसी समय माँ के समीप ले चलिए।" माँ का साक्षात लाभ कर उन्होंने कहा 'मैं बहुत समय से मातृहीन था किन्तु माँ को देखते ही ऐसा लगा कि मेरा अभाव मिट गया।"

उक्त घटना माँ को बता मैं उनके चरणों में गिर रोने लगा और माँ तो केवल हँसती ही रहीं, पीछे माँ ने कहा "आज कल के दिनों में आँखों में अँगुली देकर प्रत्यक्ष न दिखलाने से काम नहीं चलता।"

मंत्र-विभूति

जहाँ तक पता चला है श्री श्री माँ को गुरुलाभ व दीक्षा लोक रीति के अनुसार नहीं हुई थी। शास्त्र आदि के अध्ययन से उनको दिव्य ज्ञान नहीं हुआ है। बहुत से ऐसा ही समझते हैं कि माँ भगवती का अवतार ले मनुष्यों के कल्याण के लिए पृथ्वी पर आईं हैं!

बचपन में माँ के शरीर में अद्भुत भावों का विकास होता था। तब वह साधारण लोगों को दृष्टिगत नहीं होता था। वे बचपन में खेल कूद से इतनी उदास और विरक्त थीं कि अनेक ही उन्हें बेवकूफ व गूँगी लड़की समझते थे। यहाँ तक कि श्री माँ के माता पिता भी उनकी भविष्य चिंता कर सशंकित ही रहते थे। कभी कभी ऐसा होता था कि अपनी स्थिति तथा पूर्वक्षण में क्या बात कही थीं और कौन काम किया था इसका भी माँ को ख्याल नहीं रहता था।

जैसा कि सुना गया है कि वे चलते चलते पेड़ पौधों के साथ अशरीरी और अदृश्य मूर्तियों के साथ बातें करती थीं तथा अनेक प्रकार के संकेतों द्वारा अनेक प्रकार के भावों का प्रकाशन करती थीं। कभी विमना हो चुप हो जाती थीं।

उनके शरीर में १७-१८ वर्ष की अवस्था से लेकर २४-२५ वर्ष तक नाना प्रकार के अलौकिक भावों का विशेष प्रकाश होना आरम्भ
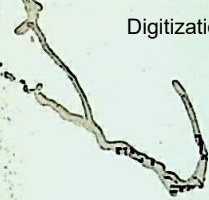
समाधी का आवेश मे श्री श्री माताजी।

हुआ। कभी कभी देवी देवताओं के नामों का उच्चारण करते करते विवश होकर गिर पड़ती थीं, कीर्तन आदि के प्रभाव से अचेतन हो जाती थीं, भगवत् प्रसंग सुन अथवा देवमन्दिर के दर्शन से उनका शरीर व्यावहारिक जगत के कार्य के योग्य नहीं रहता था। श्री श्री माँ प्रायः १८ वर्ष की आयु में बाजित पुर (मैमनसिंह) जाकर पाँच छै वर्ष वहाँ रहीं। इस समय के अन्तिम भाग में उनके शरीर से मंत्रादि स्फुरित हुए और देवी देवताओं की मूर्तियाँ उज्ज्वल हो प्रकाशित हुईं, समस्त देह में यौगिक क्रिया भी होने लगी। इन सब दैविक प्रभाव प्रकाशन के साथ वाक्शक्ति बन्द हो गई और इस तरह मौनावस्था में एक साल तीन मास बाजित-पुर में, तथा १ साल ९ मास ढाका में काटे। अन्त में लोक-दृष्टि अनुसार भी निर्मल शान्ति व विराटभाव का प्रकाश हुआ। तब देखा गया कि उनके शरीर में बाहर भीतरी चेष्टाएँ बन्द हो गई हैं और वे अपने भाव में प्रतिष्ठित हो गई हैं। इस समय की एक तस्वीर इस पुस्तक में यहाँ पर दी गई है।

उक्त प्रकार की अवस्था प्रकाश के समय पिता जी प्रायः चिंतित हो जाते और सोचते कि इन सब का परिणाम क्या होगा।

किन्तु अनेक प्रकार की लोकचर्चाओं के होते हुए भी पिता जी ने माता जी के किसी भी कार्य में बाधा न दी। उनके शरीर में देवता का प्रवेश हुआ है ऐसा सोच कर पिता जी ने अनेक बार साधुओं और ओझाओं द्वारा प्रतीकार की चेष्टा की।

उससे कोई लाभ नहीं हुआ वरन् वे लोग ही माँ के निकट जा भय से विह्वल हो गए और माँ की कृपालाभ करके ही फिर से स्वस्थ हुए।

उस समय श्री श्री माता जी के शरीर में प्रायः साढ़े पाँच महीनों तक अनेक देवी देवताओं का अविर्भाव हुआ था उन्होंने कितने सजीव देव-देवी मूर्तियों के दर्शन किए उसका हिसाब नहीं है। वे उसकी पूजा करती थीं, पूजा के पश्चात् वे फिर उनके शरीर में विलीन हो जाते थे! वाहन आदि के साथ एक देवता की पूजा समाप्त होने पर अन्य देवता का आगमन होता। पूजा और आरती के समय माँ अनुभव करती थीं कि वे स्वयम् ही देवता, पूजक, तंत्र मंत्र तथा पूजा की सामग्री फूल नैवेद्य आदि हैं।

उपर्युक्त पूजा में किसी भी प्रकार का वाह्यिक उपचार नहीं था तथा वे अपनी इच्छा मात्र ही से इन क्रियाओं को नहीं करती थीं। एकान्त में बैठने से ही स्वाभाविक रूप से पूजा आदि की यथा-योग्य दैहिक और मानसिक क्रियाएँ शरीर के ऊपर स्वतः ही होने लगती थीं। पीछे कर्मकाण्डी लोगों से मालूम होता कि मण्डल, यंत्र, आदि के निर्माण से लेकर मंत्र, योग, यज्ञ आदि सम्पूर्ण अनुष्ठान विधिवत् रूप ही से सम्पन्न होते थे। इस विषय में यदि माँ से कोई प्रश्न करता तो माँ कहती "मुझसे मत पूछो समय आने पर सब कुछ जान लोगे।"

२८ वीं चैत्र बँगला संवत् १३३० (सन् १९२३) में माँ ने

ढाका पदार्पण किया और तीन चार दिन बाद ही स्थानीय शाह-बाग में जाकर रहने लगीं। क्रमशः भक्त समागम होने लगा। १९२५ ई० में पूर्वोक्त अलौकिक पूजा के विषय में सुनकर कुछ भक्तजनों ने माँ से काली पूजा करने का अनुरोध किया। माँ ने कहा, "मैं तुम लोगों के शास्त्रिक अनुष्ठान की बात तो जानती नहीं हूँ; अच्छा होगा कि पुरोहित से पूजा करवाई जाय" बाद में पिताजी की इच्छा से माँ पूजा करने को तैयार हुईं।

जिसकी पूजा करके सब आनन्द पावें वही यदि अपने भक्तों को सिखाने के लिए स्वयम् पूजा करने को प्रस्तुत हो तो उस पूजा की महिमा ही कितनी अपूर्व होगी यह अकथनीय है। श्री माँ पूजा करेंगी तो वह कैसी होगी इस विषय की कल्पना करते ही भक्तजनों के हृदय में उत्सुकता और आनन्द का बोध होता था।

ठीक समय पर मूर्ति आई। पूजा के समय माँ आसन पर बैठ कुछ क्षणों के लिए भूमि के ऊपर चुपचाप पड़ी रहीं। बाद में भाव विभोर हो यंत्रवत् मंत्रादि का उच्चारण करते करते दाहिने और बाँये हाथ से अपने सिर पर ही फूल और चन्दन देने लगीं, कभी कभी काली मूर्ति के ऊपर चढ़ा देतीं थीं। इस प्रकार पूजा संपन्न हो गई।

बलि की व्यवस्था थी। बकरा नहला कर माँ के पास लाया गया, माँ उसे अपनी गोद में लेकर रोते रोते शरीर पर हाथ फेरने लगीं। फिर उसके अङ्ग प्रत्यंग में मंत्र पाठ कर उसके कान में कुछ मंत्र जप किया।

तलवार का उत्सर्ग करते समय उन्होंने भूमि पर पड़कर अपनी गर्दन के ऊपर तलवार रक्खी। उस समय बकरे के समान तीन आवाज उनके मुख से बाहर हुईं। उसके बाद बकरे को बलि करते समय देखा कि वह न तो चिल्लाया और न छटपटाया ही। बलि के बाद उसकी देह में से रक्त भी नहीं पड़ा। बड़ी मुश्किल से होम के लिए एक बूँद संग्रह किया। उस दिन श्री श्री माँ की असाधारण सुन्दर मूर्ति ने सब लोगों ही की दृष्टि आकर्षित की और क्रिया कर्म के आरम्भ से अन्त तक एक अपूर्व एकाग्रता देखने में आई।

१९२६ ई० में भी सबने काली पूजा के लिए माँ से प्रार्थना की। इसी बीच में एक दिन माँ किसी एक भक्त के घर गाड़ी में में बैठ कर जा रही थीं। माँ सहसा अपना बायाँ हाथ ऊपर उठा कर तनिक मुस्करा कर चुप हो गईं। पिताजी के पूछने पर भी कोई उत्तर नहीं दिया। बाद में फिर जब वहाँ भोग के लिए बैठीं तो फिर पहले की तरह माँ ने अस्वाभाविक भाव से हाथ उठाया। इस विषय में माँ ने बाद को बताया कि जब वे रास्ते से जा रही थीं तब १२० अथवा १३० गज दूर मैदान के बीच में जमीन से १८ हाथ ऊँची एक सजीव काली मूर्ति माँ को देख उनकी गोद में आने के लिए हाथ बढ़ाकर प्रस्तुत हो रही थी। फिर भोग के समय वही काली मूर्ति छोटी सी लड़की के रूप में वहीं आ खड़ी हुई थी। इसी कारण दोनों जगह ही माँ का बाँया हाथ उस मूर्ति की ओर उठ गया था।

काली पूजा के एक दिन पहले शाहबाग में फिर भक्तों ने पूजा के लिए विशेष अनुरोध किया। माँ ने पिताजी से कहा, 'जब इन लोगों का इतना आग्रह है तो तुम भी तो पूजा कर सकते हो।' पिताजी ने यह सुन कर सबसे कहा, "पूजा का प्रसंग जब तुम लोगों की माँ के मुख से एक बार बाहर हो गया तो पूजा होगी ही तुम सब आयोजन करो।' काली मूर्ति के नाप सम्बन्धी प्रसंग उठते ही पिताजी को माँ का गाड़ी पर से और भोग के समय में हाथ उठाना स्मृत हो आया। माँ उस समय अचेतन सी जमीन पर लेटी थीं। अन्दाज से एक नाप ले लिया गया। उस समय रात के ग्यारह बजे थे, एक दिन में इस नाप की मूर्ति कहाँ से तथा कैसे तयार हो यही सोच विचार करते हुए श्रीयुत सुरेन्द्रलाल वंद्योपाध्याय शाहबाग से शहर आये। शहर में एक दुकान पर देखा कि ठीक इसी नाप की एक मूर्ति है। उस कारीगर ने १२ मूर्तियाँ बनाई थीं ११ तो आर्डर की थीं और एक उसने अपनी निजी इच्छा के अनुरूप बनाई थी। वही दुकान पर रह गई थी यथा समय वह मूर्ति आई। पहले की तरह ही माँ ने पूजा का सम्पादन किया। उस समय माँ के अपूर्व देवीभाव के दर्शन हुए। पूजा के कुछ देर बाद हठात् ही माँ पूजा के आसन पर से उठ पिताजी से बोलीं 'मैं अपने आसन पर बैठती हूं अब तुम पूजा करो।' यह कह माँ एक क्षण के लिए काली मूर्ति के पास खड़ी हो अट्टहास करती हुई जमीन पर बैठ गईं। उस समय पूजागृह एक अवर्णनीय भावधारासे प्लावित हो नवीन श्री धारण

किया था। माँ ने कहा 'तुम सब आँख मूँद कर नाम करो।'

कमरा आदमियों से भरा था, बाहर आड़ में खड़ा एक व्यक्ति चुपचाप पूजा देख रहा था। वह किसी को भी नहीं दीख रहा था। माँ ने उसका नाम पुकार कर कहा, "तुम भी आँखें बन्द करो" सबकी आँखें बन्द थीं क्या हुआ क्या न हुआ कोई भी जान न पाया। आँखें खुलने पर देखा कि वृन्दावन चन्द्र बसाक वकील मूर्छितावस्था में पड़े थे। उन्होंने बाद में जैसा कि बताया था कि माँ के मुखमण्डल पर दिव्य ज्योति देख वह बेहोश हो गए थे।

पूजा की समाप्ति के साथ ही रात भी समाप्त हो गई। उस बार बलि की व्यवस्था नहीं थी। पूर्णाहुति के समय माँ ने कहा, "पूर्णाहुति नहीं दी जावेगी, यज्ञ की अग्नि रख दो।" वह अग्नि आज भी रमणा आश्रम में है। ❀

दूसरे दिन मूर्ति विसर्जन की बात चल रही थी। श्री निरंजन की स्त्री विनोदिनी विसर्जन के लिए सभी सामग्री लाई थी। उन्होंने मूर्ति दर्शन कर माँ से बड़े कातरभाव से कहा, "माँ इस मूर्ति की विसर्जित करने में मुझे बड़ा दुःख लग रहा है।" माँ ने कहा, "तुम्हारे मुख से जब यह बात निकली है तो शायद यह

❀ अब यह अग्नि काशी आश्रम में लाई गई है और इसी आश्रम में इसकी अखण्ड रूप से स्थापना हुई है। इसी अग्नि द्वारा काशी का गायत्री महायज्ञ हुआ है।

मूर्ति विसर्जित होना नहीं चाहती है । अच्छा ! इसको रख पूजा की व्यवस्था की जायगी ।"

यह मूर्ति लगभग अनेक वर्षों तक उसी रूप में विद्यमान रही ।

१९२७ ई० सितम्बर के महीने में माँ चुनार से जयपुर जा रही थीं । मैं उस समय चुनार ही में था । उन्हें गाड़ी में बिठाने के लिए स्टेशन गया था । तब माँ ने मुझे फोर्ट के निकटवर्ती पहाड़ पर एक स्थान बताते हुए कहा, 'वहाँ तुझे एक फूल की माला मिलेगी, लौटते समय उसे ले जाकर यत्न से रख देना ।' मैंने उसे ढूँढ़ कर रख ली । जयपुर से लौटते समय माँ ने उस माला को देखा । बाद में जब माँ ढाका गईं तब खोज करने पर मालूम हुआ कि जैसे कि काली मूर्ति को रोज माला देने की व्यवस्था थी तो उस दिन भूल से माला चढ़नी रह गई थी । और एक बार माँ जब काक्स बाजार में थीं, एक दिन सन्ध्या के समय समुद्र के किनारे घूमते हुए बोलीं, "मेरा हाथ टूट गया है क्या ? टूटा है ? तुम लोग देखो तो यह टूट भी सकता है ।" ठीक उसी रात को ढाका में काली मूर्ति के हाथ तोड़ कर एक चोर गहना लेकर भागा था ।

यह मूर्ति इस समय रमना आश्रम के तहखाने में रखी है । प्रत्येक वर्ष वैशाख या जेठ के महीने में माँ के जन्मोत्सव के समय सब जाति के लोगों को दिखाने के लिए इसका द्वार खोला जाता

है। 'भारत में मन्दिरों के द्वार सबके लिए खुले रहें।' इस आन्दोलन के पहले ही माँ ने उक्त व्यवस्था की थी।

एक बार सिद्धेश्वरी के आसन में वासन्ती पूजा हुई। मूर्तियों की प्राण प्रतिष्ठा के समय माँ स्वयम् वहाँ उपस्थित हो अनेक देर तक उनकी तरफ देखती रहीं। मिट्टी की उन मूर्तियों की आँखें भी सजीव चल नेत्रों की भाँति दीप्तिमय हो गई थीं।

माँ कहती हैं 'देव देवियों की सत्ता भी वास्तव में हम तुम ही के समान सत्य है, भावपूर्ण नेत्रों से ही उनके दर्शन हो सकते हैं।

भाव-विभूति

जिनका प्रत्येक भाव आनन्दमय, आनन्द ही जिसका उपादान, आनन्द ही में जिनकी स्थिति, जिन्होंने जगत् की आनन्द लीला के लिए आनन्द का ही मूर्तिमय रूप धारण किया है, उनमें प्राणी-मात्र के मंगल के लिए बहुत प्रकार की उत्पत्ति, स्थिति और लय होना नितान्त स्वाभाविक है। एकान्त भाव से देखने से माँ के दो रूप दृष्टिगत होते हैं--एक उनका बाह्य रूप और दूसरा उनके अन्तर का, इन दोनों रूपों के क्रीड़ा कौतूहल का भाव सदा ही उनमें प्रकाशित है।

आरम्भ ही से ढाका आने पर माँ अधिकांश समय लेटी ही रहा करती थीं। हम सुना करते थे कि माँ किसी अकथनीय महत् भाव की प्रेरणावश आत्मविस्मृत सी हो कभी कभी सारे दिन पड़ी रहती थीं, कीर्तनादि के समय उनकी लीला विशेष रूप से जनता में प्रकाश पाती थी। ब० सं० १३३२ (१९२६ ई०) में शाहबाग में उत्तरायण संक्रान्ति के उपलक्ष्य में कीर्तन होगा, यही माँ का सर्वप्रथम प्रकट कीर्तन था। उस समय चटगाँव से श्रीयुत शशि-भूषण दासगुप्त ढाका आए। वह वहाँ पहुँचते न पहुँचते ही माँ को देख भक्ति श्रद्धा से विभोर हो उठे। खूब जनसमुदाय इकट्ठा था, वे दूर से माँ का दर्शन कर रहे थे और अश्रुविमोचन हो रहा था।

उन्होंने मुझसे कहा, "जीवन में जो नहीं देखा था वह आज देख लिया, विश्वजननी के साक्षात् दर्शन हुए।" प्रायः १० बजे कीर्तन प्रारम्भ हुआ। माँ बैठी हुई स्त्रियों को सिन्दूर दे रही थीं, सहसा उनके हाथ से सिन्दूर की डिबिया गिर गई। सब शरीर जमीन पर गिरने लगा। कुछ देर में जमीन पर से उठ पैर के अंगूठे के बल खड़ी हो दोनों हाथों को ऊपर की ओर उठा और सिर को पीछे की ओर ले जाकर स्थिर तथा अपलक दृष्टि से देखने लगीं। बाद में माँ इस अवस्था में चलने भी लगीं। न जाने किस दैविक भाव से परिपूर्ण थीं। सिर तथा शरीर के कपड़ों की ओर ध्यान ही न था। उनको पकड़ने की भी किसी में क्षमता नहीं थी, उनका समस्त शरीर नृत्य कर रहा था, इसी अवस्था में ही कीर्तन के स्थान पर जाकर गिर पड़ीं। जमीन पर पड़ते ही माँ का शरीर वायु के वेग से एक सूखे हुए पत्ते की तरह ३०, ४० हाथ तक इधर उधर लोटने लगा। थोड़ी ही देर में पड़े-पड़े ही 'हरे मुरारे मधु कैटभारे' ध्वनि सुमधुर स्वरयुक्त हो माँ के मुख से बाहर हुई, मदमत्त की भाँति आत्महारा सी उठ बैठीं। दोनों आँखों से अश्रु-विमोचन हो रहा था। बहुत देर के बाद वे पूर्व स्थिति में आईं। उस समय उनको अपूर्व मुखश्री, मधुर दृष्टि तथा गद्‌गद् भाव देख सभी कह रहे थे, "पुस्तकों में महाप्रभु गौरांग के जो भावावेश के विषय में पढ़ा था वही आज माँ हीं में सब प्रत्यक्ष देखा।" फिर सन्ध्या को माँ कीर्तनमण्डप में गईं दोपहर की भाँति ही भावावेश दिखाई दिया। कीर्तन मण्डली के

साथ ही घूमने लगीं, एक पैर के बल नृत्य करते करते कुछ दूर गई बाद में उनका शरीर फिर जमीन पर गिर पड़ा। काफी देर तक ऐसा ही चलता रहा, तब माँ उठ कर बैठ गईं। उस समय की उनकी भाव विभोरता की अधूरी सी बात उपस्थित भक्त मण्डली के हृदय अमृतरस संचार कर रही थीं लूट के बाद माँ ने स्वयम् खिचड़ी प्रसाद वितरण किया विपुल जनता के प्रसाद वितरण की क्षिप्रता कौशल और अपूर्व मातृभंगी का दर्शन कर सब के ही मन में ऐसा लग रहा था कि मानों स्वयम् महालक्ष्मी इस भूतल पर अवतीर्ण हुईं हैं। श्री श्री माँ की उस दिन की लीला तथा संसार दुर्लभ ऐश्वर्य की मूर्ति देख उपस्थित अनेक ही दिव्यभाव से वशीभूत हो गए थे।

निरंजन कलकत्तेसे इनकमटैक्स विभाग के असिस्टेण्ट कमिश्नर हो ढाका आए। एक शाम को हम दोनों अमावस कीर्तन के लिए शाहबाग गए। कीर्तन आरम्भ होने के साथ ही साथ माँ का भाव भी बदलने लगा। जिस अवस्था में बैठी थीं, उसी अवस्था में सीधी होते हुए सिर पीछे की ओर हो पीठ से जा लगा। इसके बाद हाथ पैर मोड़ धीरे धीरे शरीर फर्श पर गिरने लगा। प्रत्येक साँस के साथ समस्त शरीर हिलने लगा तथा प्रत्येक कम्पन के साथ शरीर जमीन पर लोटने लगा। प्रचण्ड हवा के झोंके से जिस प्रकार पेड़ का झड़ा पत्ता उड़ता पड़ता है, ठीक उसी प्रकार माँ के शरीर की भी दशा थी जो साधारण लोगों के लिए तो साध्यातीत है। सभी को ऐसा लगा मानों भाव वश हो लीलामयी माँ

ने अपने संज्ञाहीन भावपूर्ण शरीर को पूर्णविभोर कर दिया है सिर व शरीर के कपड़े की ओर तो कुछ ध्यान ही नहीं था। उनको पकड़ने की अनेक बार चेष्टा की किन्तु सब विफल हुईं। अन्त में माँ बहुत देर तक गम्भीर और स्थिर हो गईं मानों किसी अखण्ड आनन्द रस से जड़वत् हो गई हों। माँ की मुखश्री दिव्यज्योति से मुखरित थी, सारा शरीर भूमानन्द का वर्णन कर रहा था। निरंजन माँ की इस भावावस्था के प्रथम दर्शन ही से देवी स्तोत्र का पाठ करने लगे। मुझसे बोले, "आज साक्षात् देवी का दर्शन हुआ"।

तत्पश्चात् एक दिन साहबाग में कीर्तन के लिए अनेक मनुष्य इकट्ठे थे, धीरे-धीरे कीर्तन हो रहा था। पूर्वोक्त अमावस की रात की भाँति ही माँ को भावावेश हुआ। किन्तु इस बार माँ बैठी ही बैठी धीरे धीरे जमीन पर लेट गईं और श्वास क्रिया के साथ ही साथ हाथ पैर फैला उलटी होकर लेट गईं। अन्त में लहर (तरङ्ग) की भाँति जमीन पर विकम्पित होने लगीं। बाद में सहसा उन्मा-दिनी सी हो ऊपर की ओर बिना किसी सहारे से उठने लगीं एवं बहुत देर तक दोनों एड़ी के सहारे खड़ी रहीं। श्वास-प्रश्वास का वेग कुछ देर के लिए प्रायः स्थगित सा लगा। दोनों हाथ आकाश की ओर ऊपर को उठ रहे थे, दोनों एड़ियाँ जमीन को स्पर्श मात्र कर रही थीं, सिर पीछे की ओर झुका था, अपलक नयनों से ऊपर की ओर देखती हुईं चल रही थीं—कठपुतली जिस प्रकार किसी अदृष्ट हाथ द्वारा चालित रहती है ठीक उसी प्रकार उनकी

भावावेश तथा विचरण था। उनकी दोनों आँखें उज्ज्वल थीं, मुख पर प्रसन्नता और हँसी थी। तनिक देर बाद ही दोनों पैरों को दोनों अंगूठों का सहारा देकर कीर्तन के साथ ही साथ अपलक उद्धूर्व दृष्टि तथा उद्धूर्व हाथों से शून्य की ओर अग्रसर सी होने लगी मानों कि समस्त शरीर की गति ऊपर की ओर खिंचती जा रही है। इसी अवस्था में बहुत सा समय कट गया। बाद में एक जगह आँख बन्द कर उसी भाव में जमीन पर पड़ गईं। अन्य समय माँ का सिर सीधा रहता था किन्तु उस दिन और ऐसा नहीं हुआ। संज्ञाहीन मांस पिण्ड की भाँति शरीर पड़ा रहा। दूसरे दिन सुबह प्रायः १० बजे से माँ की अवस्था में अन्तर पड़ता गया और संध्या को उनकी वही स्वाभाविक चेतना लौट आई।

इसके बाद निरंजन के घर एक दिन कीर्तन हुआ। सभी, विशेषतः निरंजन की वृद्धा माता माँ के महाभाव देखने को आतुर थे तथा मन ही मन प्रार्थना कर रहे थे कि भावमयी माँ के दर्शन उन्हें भी हों। जिस कमरे में कीर्तन हो रहा था, उसके निकटवर्ती कमरे में माँ लेटी हुई थीं; सहसा माँ कीर्तन के कमरे में जा अलौकिक भाव से कीर्तन में योग दान देने लगीं और हाथ दोनों ऊँचे उठा कर प्रेमवश नृत्य करते करते जमीन के ऊपर पड़ गईं। उस दिन अपनी स्वाभाविकावस्था में लौट तो आईं किन्तु एकदम मौन हो गईं।

इन लक्षणों को छोड़ उनके शरीर के भाव अनेक विचित्रता के साथ प्रकाश पाते थे जिनकी वर्णना का सर्वथा असम्भव है।

शरीर लोटता था। कभी लम्बा कभी छोटा तथा कभी गोलाकार मांसपिण्ड के रूप में हो जाता था। कभी कभी ऐसा लगता था कि शरीर में हड्डियाँ ही नहीं हैं। शरीर रबड़ की गेंद की भाँति जमीन पर लुढ़कता नाचता चलता था। उनके देह की चलनभंगी बिजली की भाँति इतनी तीव्र थी कि तीक्ष्ण दृष्टि द्वारा भी उसका अनुसरण नहीं किया जा सकता था।

ऐसे समय ही ऐसा प्रतीत होता था मानों यह देह श्री श्री माँ का नहीं है मानों किसी स्वर्गीय भाव का प्रवाह माँ के शरीर को विगलित कर नृत्यपूर्ण करता हो। शरीर उनका रोमांचित हो उठता, शरीर का वर्ण अरुण हो जाता तथा मुखमण्डल उज्ज्वल हो उठता था। दैवीभाव के स्वतः प्रकाश लक्षण उनकी देहसीमा में सीमातीत के अपूर्व रूप माधुर्य का प्रकाश कराते।

कभी कभी कीर्तन के छन्दों पर सुन्दर नृत्य कला मानों माँ के शरीर को भी अतिक्रम कर अपूर्व रूप से चलती, कभी सागर की सी निस्तब्धता तथा मौन शान्ति एकत्रित भक्तजनों के हृदय में अद्भुत भाव का उदय करती तथा उनके हृदय के चांचल्य को स्थगित प्राय-सा करा देती थी।

उनको देखकर ऐसा लगता था कि वे मानों उपर्युक्त सभी विभूतियाँ उच्चस्तर पर अपने ही साथ में रखे हुई हैं, भाव विकार मानों किसी अदृष्ट संकेत द्वारा उनके शरीर से स्वत प्रकाशित हो उठते थे।

मैंने एक दिन माँ से पूछा, "जब आपको भावावेश होता है तब आपके शरीर व आँखों के सम्मुख किसी देवी-देवता का अविर्भाव होता है क्या ?" माँ ने कहा, "मेरा लक्ष्य कहीं विशेष स्थान पर केन्द्रित नहीं होता है। ऐसा करने का मेरा प्रयोजन भी नहीं है। तुम सब भावावेश के लक्षण देखना चाहते हो। इसी कारण कभी कभी इस शरीर में वह सब प्रकाशित हो जाता है। जब भी कोई कर्म पूर्णभाव से होता है तब तब उस कर्म की पूर्ण क्रिया (तद्रूपता) प्रकाशित होवेगी ही होवेगी। नाम में तल्लीनता आने ही पर रूप सागर में डुबकी लगा सकते हैं। नाम और नामी को अभेद मान वर्हिजगत की किसी भावना का आभास नहीं रहता है, नाम की जो स्वप्रकाश शक्ति है वह आप से आप फूट उठती है।"

कीर्तन में जिस प्रकार माँ के शरीर की अवस्था अलौकिक हो जाती थी, माँ ही के मुख सुना है कि जल, अग्नि, मिट्टी, पशु पक्षी व किसी विशेष दृश्य आदि देखने पर कभी कभी वे भी उसी तरह हो जाती थीं। हवा के झोंके के साथ उनका शरीर भी कपड़े की भाँति उड़ हवा ही के साथ मिल जाना चाहता था तो कभी किसी गम्भीर ध्वनि (जैसे शंख) को सुन उनका शरीर पत्थर की तरह स्थिर हो जाता। श्री श्री माँ के ख्याल में जब भी कोई भाव क्रीड़ा आती तो उसी के अनुरूप क्रिया होने लगती तथा समस्त देह में संचार हो उसका सजीव ही दर्शन हो उठता।

एक बार बच्चों को हँसी खेल में साथ देते हुए माँ ने वह

हँसना शुरू किया जो एक घण्टा तक अनेक चेष्टा करने पर भी रुका नहीं। दो एक मिनट चुप हो जायें फिर हँसना आरम्भ कर दें। बैठी एक भाँति ही रहीं किन्तु मुख और नेत्रों में असाधारण भाव था। सब लोग यह अवस्था देख डर गए। बाद में आप से आप ही प्रकृतावस्था में आ गईं।

एक बार ढाका से कलकत्ता गईं। स्टेशन पर लड़के लड़कियाँ, स्त्री, पुरुष दर्शन के लिए आए और उन्होंने रोना आरम्भ कर दिया। माँ ने भी उन लोगों के साथ समस्त अंगों को उलट पुलट करते हुए जो रोना शुरू किया कि उन्हें चुप कराना ही कठिन सा हो गया। स्टेशन पर बहुत से लोग थे। वे कहने लगे शायद लड़की बाप के घर से बिदा हो रही है, वह रुदन १२ बजे जो शुरू हुआ तो संध्या तक ही धीरे धीरे कम हुआ।

एक दिन माँ ने मुझसे पूछा, "तुम लोगों के हँसने, रोने का केन्द्र कहाँ है ?" मैंने बताया कि यद्यपि हँसने रोने का प्रवाह तो मस्तिष्क ही से उद्‌भूत होता है किन्तु केन्द्र हृदय ही है। माँ ने कहा, "नहीं, यदि हँसने रोने में प्राकृतभाव हो तो उसका प्रकाशन सर्वांग में ही होता है।" मैं इस बात का मतलब नहीं समझा, चुप हो रहा। कुछ दिन बाद एक दिन तड़के ही आश्रम गया। माँ से मिलने पर पूछा, "माँ! कैसी हो ?" माँ ने किस प्रकार अद्‌भुत रूप से जोर देते हुए कहा, "खू...ब...अ...च्छी हूँ......।" इस बात के तीव्र आवेग से मैं एक बार यो बिलकुल स्तम्भित हो गया, सिर से पैर तक एक बिजली सी दौड़ गई। माँ

यह देख बोली, "क्यों रे ! समझा हँसी का केन्द्र कहाँ है ? शरीर के किसी भी अङ्ग में कोई भी भाव रूद्ध रहे तब तक उसे पूर्ण भाव नहीं कह सकते हैं।"

श्री श्री माँ के मुख से ही सुना है कि जब साधक एकाग्रचित्त हो ईश्वर का ध्यान करते हैं तब वाह्यजगत के विपरीत भाव उसकी भावधारा को विशृंखल कर वेदना उत्पन्न करते हैं। ऐसे समय पशुपक्षी वृक्ष लता तक का आघात साधक के मन को दुःखी कर देता है। मनुष्य के सुख और दुःख की तरंगें भी ईश्वर योग की तल्लीनता में बाधा देती हैं।

जब तक साधक के वहिर्जगत के संस्कार प्रबल रहते हैं तब तक उसे ऐसा लगता है कि उसकी ज्ञानेन्द्रिय सम्बन्धी सभी कुछ उसके 'अहंभाव' के ही अन्तर्गत है। इसलिए पेड़ का एक पत्ता मात्र गिरने से भी उसका चित्त काँप उठता है। श्री श्री माँ के स्वयं प्रकाश कर्मों के प्रथमोदय के समय भी उसी के अनुरूप भाव प्रकाशन सुना जाता है।

महाभाव के बाद श्री श्री माँ जब अपनी प्रकृतावस्था में आ जाती थीं तब उनके शरीर में अनेक प्रकार की योगक्रिया स्वयं प्रकाशित हो उठती थीं। उस अवस्था में उनके शरीर से पहले एक अस्पष्ट ध्वनिगुंजन सुनाई पड़ता था। इसके कुछ देर बाद वृष्टि के तीव्र थपेड़ों से समुद्र के तरङ्ग प्रवाह के समान देवभाषायें माँ की स्वयम् की सत्यवाणी मधुर छन्दयुक्त हो अविरल रसधारा की तरह बह निकलती, तब ऐसा प्रतीत होता था कि महाव्योम

की समस्त रागरागिनियों की अपूर्व झङ्कार ले सत्य का स्वरूप वाणी रूप में मूर्तिमय हो उठा है। इतना विशुद्ध उच्चारण स्व-रचित छन्दों का ऐसा मर्मस्पर्शी प्रवाह, उनके मुख की ऐसी निर्मल पावन ज्योति हजार चेष्टा तथा तपस्या करने पर भी पण्डित वर्ग ला सकें इसमें सन्देह है।

इस स्वतः प्रकाशित वाणी का अर्थ गौरव देख विद्वत् मण्डली भी स्तम्भित हो गई। वह भाषा सबके समझ में नहीं आ सकती है, इस कारण लिपिबद्ध करना असम्भव है। इस प्रकार के केवल चार सूत्र बाद में दिए गए हैं।

इनके संशोधन के लिये एक बार मैंने माँ से कहा था। उन्होंने कहा "यदि होना होगा ही है तो समय आने पर होगा, इस समय तो कुछ ख्याल में नहीं आ रहा है।" परवर्ती चार सूक्तों में से एक का अर्थ कुछ वैदिक भाषा के ज्ञानी पण्डितों ने किया था, वह नीचे पाद टीका में दिया है।

इन कई सूक्तों से विश्वास होता है कि श्री श्री माँ की भावमयी देह ने जगत के कल्याण, शान्ति और उन्नति के लिए वाणीरूप में आत्मप्रकाश किया है। उनके प्राणों का पवित्र आवेश, दया-मयी का अपूर्व करुणामय मातृप्रेम, संसार के प्राणियों की कल्याणकामना लिए हुए रूप उन्हें विश्वजननी के पद पर अना-यास ही बैठा देता है।

इन सब सूक्तों के प्रसंग में माँ से सुना है "शब्द ही जगत का आदि कारण है, नित्य शब्द व सद्वाणी के विकास और

प्रत्यावर्तन के साथ ही साथ सृष्टि का विकास और विवर्तन होता चलता है।" ऐसे समय माँ की वाणी कभी तीक्ष्णधार की तरह पैनी और तीव्र, कभी संध्या के समुद्र की तरह स्निग्ध कभी पूर्णिमा की मध्यरात्रि के समान गम्भीर और प्रशान्ति पूर्ण रहती है। इसके साथ ही साथ उनकी दृष्टि तथा मुखभङ्गी में भी विकास और परिवर्तन होता चलता है।

कभी कभी इन सूक्तों के प्रस्फुरण के साथ उनका अविरल अश्रु विमोचन, अलौकिक उज्ज्वल हास्य की दीप्ति अथवा बादल और धूप आँख मिचौनी की तरह हँसने और रोने का भाव आ उनकी करुणामयी मूर्ति को स्वर्गीय विभूति द्वारा दिव्य और मधुर बना देता। इन सब वाणी प्रकाश के बाद माँ अनेकक्षण मौन रह कर धीरे धीरे अपनी स्वाभाविक अवस्था में आती थीं, किसी किसी दिन तो बिलकुल निश्चल तथा निस्पंद-सी पड़ी रहती थीं*।

एहि भावनायं भायं एहि यं सं तानि तायम्
भावमयं भवभय हरणं हे।
यस्मिं स्त्वहं भाग पौं हं वां क्रीं आं हे
भां हां हिं हौं हं र्हीं वं लं यं सं त्वम्
तादरौ भाग सं वं लं हे देव भक्तमयं मम हे
स त्वं हि हं यं वं वायं कं भावभक्ति...भावमयं हे।

---

* श्री श्री माँ की भावोन्माद की एक तस्वीर इस अध्याय में है।

महात्मायं भवभयं हर हे
दैवतं मयं मे सं तं ह्रीं मत्तस्त्वम् भवोऽथंम्
य स्तानि त्वं तारणमयम् भवभयनाशम् भावय हे
स्वभाव शरण गतम् प्रणव जासनम्
भवानी भवं भवभय नाशनम् हे
हरशरणागतं.........तायं
विभावतः ममायनम् हे।
यस्तारणं तत्र द्वयरूपं मयाहि सर्वाणि स्वरूप मयानि
मयाहि सर्वं मयाहि सर्वशरणं हे।
दास नित्यं...प्रणवश्रुतकारणंम्
महामाया महाभाव मय मय हे।
मम भो भक्तौ तरणं मा मम सर्वमयं हे
यस्या रुद्ररुद्र त्वं प्रणवे रां ऋं कृतकारणं रुद्रं नौमि
प्रां वां हां सां श्रां हिं श्रं
भावमयं हे.......संसृष्टः केशवः ॥*

---

* लं—पृथ्वी, विमला, वेदार्थसार, नारायण।
यम्—वायु, काली, पुरुषोत्तम, चामुण्डा युगान्तश्वसन।
वम्—वरुण, विष्णु।
तम्—हरि।
अम्—आकाश सर्वेश।

इस स्तोत्र में व्यवहृत कुछ प्रचलित बीज मंत्रों का अर्थ दिया जाता है। इस स्तोत्रका हिन्दी तथा संस्कृत भाख्या ही "मातृदर्शनम" नाम से श्रीमान सोलन राज पंडित महा महोपाध्याय मथुरा प्रसाद दिक्षीत जी ने प्रणयन की है। यह पुस्तक काशी आश्रय में मिलती है।

(२)

जामः स्मरणं सर्व्थ छत्तम्
सविनय मय भवतः
य समेदनामं सर्व भूते सी समन्वयेः
सर्व स्वरूपे नित्यं अनित्यं ममः ।
स्वम्भवया नः सिहं, शंकर सविस्मये नमः नः स्वययम्ः
नः भिव भवसिहं संचित मादने स्वय स्मिति स्मृति
र विपरनमं भवः तमाहम्
माया विभित मादने छरमे स्वहम्
छ पिपातने मातंगं साहारनम्
रंजितं शोभिवतः मिजने जानम्
र तिन वेत्तः वेदनं मिदाहनं स्वपिप सारनमेः
छ तिन माहं स्वपिपा सन मम्
रोग कान्ति तिन मे स्वहम
यः विव मातयेः ।

आम्—नारायण, अनन्त ।
सम्—हंस, जगद्बीज, सोहम्, परमात्मा ।
हम्—परमात्मा, हंस, शिव ।
हौम्—प्रसादाख्य शिव बीज ।
क्रम्—रुद्र, महारौद्री ।
कम्—महाकाल, कामदेव, वासुदेव, अनन्त ।
क्रीम्—शक्ति बीज, काली बीज ।

(३)

यम् तारिनी यत् सवे सम यौ तिपारितं हस्ते संस्ते जसम् ।
रूपादित्यं करुणे रौद्रस्य रूपकारस्मि छन्ते निमित नमः ।
आः इः उः हं सं रं लं यं सं हं हं ऋं क्री ऋं सं सं सम् ।।
रां रां रां रोम् रोम् रोम् ।। द्रवे दित्यं शान्त शिषे स्ये
स्थानित्यम् ।।

ह्रीम्—तारा बीज, भुवनेश्वरी बीज, माया बीज ।
भाम्—अनन्त विश्वमूर्ति ।

२० वैसाख १३३६ बगाब्द में श्री श्री माँ आनन्दमयी ने नव प्रतिष्ठित रमना आश्रम में २४ घण्टे मात्र ठहर कर हठात् विदा लेने को प्रस्तुत हो गईं । इस स्तोत्र के कुछ अंश दुहराने पर माँ ने लिखने की अनुमति दी थी । किन्तु आवेशजड़ित इस स्तोत्र का थोड़ा ही अंश लिखा जा सका है और जो भी लिखा गया है वह ठीक वही है, यह भी कहा नहीं जा सकता है । उन्होंने इस असम्पूर्ण तथा भ्रमपूर्ण स्तोत्र को कीर्तन से पहले बाजे पर गाने की अनुमति दी थी । नीचे इस स्तोत्र के मर्म्मानुवाद देने की चेष्टा की गई है ।

'हे ज्योति स्वरूप, विश्व के भाव स्वरूप तुम अवतार ग्रहण करो । तुम्हारे ही से सृष्टिजाल फैला हुआ है । हे भवभय-हारी ! तुम अवतीर्ण हो । तुम सृष्टि के बीजरूप हो, तुम्हीं वह आदि पुरुष हो जिसमें मेरी स्थिति है । ये जो मेरे भक्त हैं उनमें भी तुम विराजित हो । तुम्हारे को प्रकाशित कर रही हूँ तुम संसार का दुःख मोचन करो ।

* हे सर्वदेवमय ! मुझमें ही तुम तथा मैं ही विश्वजगत हूँ । जिस तारणमय की यह समस्त सृष्टि निवास भूमि है उसी भवभय नाशकारी

रिपु कारणं महामाये आलक्तिललं णाः णिः सम् स्तेजस्मि ।
अग्न्ने पित केन्तनं आं दं पिं आः सः वित्रदमं नः सौः रितीः ॥
अं, शं, सां, ह्रां, ह्रां......ह्रींह्रीं धनमे दित्यः अहम् स्ते जसम् ॥
आं आं ईं ईं....ॐ स्ते जस्य स्वर वर्णेषु शान्ति सेवतं इत्व
निराहाराम् ॥

सम्दिदेः यं पुराणिता अन्ये पे ऋक् ऊँ अर निंरात्रित्वं यशमेदि पुराणे लभिदा दनमे दात्तां रक्षक मया मितं जनमे शान्ति स्वरूपिणी विद्या रूद्रात्तनमे अन्नपूर्णा सन्निदत्ता यशवेदा विह्वलां स्मरणे स्मरणान्वितं ॐकारस्य समेसं यस्त्वात्तनमे क्रीं रम्

शान्ति अभवा विभूषितम् !!!

का ध्यान कर । तुम शाश्वत अपने ही भाव में स्थित हो । पुणवज अर्थात् वेदों के तुम प्रतिष्ठापक हो । तुम्हीं नाद और बिन्दु के तथा काम और कामेश्वरी रूप हो तुम संसार भय का नाश करो । मैं तुम्हारी शरणागत हूँ तुम्हीं मेरा आश्रय हो तुम मुझे अपने में आकर्षित कर लो । तारक के रूप में तुम्हारे दो रूप हैं—मोक्षदाता तथा मोक्षकामी जीव । मेरे ही द्वारा सबका स्वरूप है । मुझसे ही सब तथा मुझमें ही जीव जगत की प्रतिष्ठा भूमि है । मैं ही वेद स्वरूप (प्रणव कथा) कारण मैं ही महामाया और महाभावमय । मुझे जो भक्ति रूप वही मुक्ति का हेतु है । सभी मेरे हैं । मेरे द्वारा ही रूद्रका रूद्रत्व अर्थात् शिव का शिवत्व, वही मैं कार्यकारणात्मक शिव की स्तुति करती हूँ ।

(४)

ॐ स्वस्ति, ॐ स्वस्ति, ॐ स्वस्ति
श्रद्धार्थनं शंकट उवाच
नै सृंह उग्गता नमे।
नरो रूप भ्रमन्वये:
संस्तिचं भ्रूतपाः महत् मायायाम्
श्वसना रुद्रं पियास्व मे:। ❀

❀ जब मैं बहुत ही आकुल तथा व्याकुल हो छटपटाया करता तब सहसा एक दिन माँ के श्रीमुख से यह श्लोक निःसृत हुआ। सुबह शाम इसको पाठ करने के लिए मुझे आदेश था।

योग-विभूति

माँ ने बताया कि उनकी कुछ दिनों के लिए ऐसी अवस्था हुई थी कि उनके शरीर में शास्त्र लिखित अनेक आसन, मुद्रा तथा योग स्वयम् प्रकाशित हुए। अधिकांश समय यह योग विभूति जनता के समक्ष में नहीं हुई। इस सम्बन्ध में माँ ने कहा था, "जिस प्रकार बीज अंकुरित होने से पहले उसको मिट्टी से दबा कर अन्धेरे में रखना होता है उसी प्रकार जीव की साधनावस्था में भी उसके प्रत्यक्ष कर्मों के अन्तराल अपरोक्ष रूप से अनेक (कुछ) परिवर्तन होता रहता है।"

कभी कभी उनका हाथ पैर सिर इस तरह टेढ़ा तिरछा हो जाता था कि ऐसा लगता था कि अब और सीधा नहीं हो सकेगा। माँ बतातीं कि, "कभी कभी मेरे शरीर से ऐसी ज्योति फूटती कि चारों तरफ ज्योतिर्मय हो जाता। ऐसा लगता कि वही ज्योति मानों समस्त विश्व को प्रकाशित कर रही है।" ऐसी अवस्था में वे समयानुसार अपने शरीर को कपड़े से ढक कहीं अकली सी जगह घरमें पड़ी रहतीं।

ऐसे समय उनके शरीर से ऐसी एक अलौकिक शक्ति का अविर्भाव होता कि उनकी दृष्टिमात्र से मनुष्य आत्मविस्मृत से हो उठते तथा कोई उनके चरण छू कर मूर्छित हो जाता। उस समय

माँ जिस जिस जगह बैठतीं व लेटतीं वह स्थान अग्नि की तरह गरम रहता।

ढाका में मैंने स्वयं श्री श्री माँ के अनेक प्रकार के आसन देखे। कभी कभी माँ की श्वास क्रिया इतनी जल्दी-जल्दी होती कि मैं सशंकित हो उठता, कभी कभी एकदम श्वास प्रश्वास की क्रिया मंदप्राय सी हो जाती। एक बार कुछ आसन क्रियाओं की तस्वीरें माँ को दिखाईं, उनमें कुछ को देख कर माँ ने कहा इनमें सिर तथा उरु की स्थिति समुचित नहीं हुई है। जिन लोगों का उनके साथ रहने का सौभाग्य हुआ है, उनमें से अनेकों ही ने देखा है कि माँ अनेक समय तक बिना किसी उद्वेग के एक आसन पर ही बैठी रहती हैं; कभी कभी बात करते करते एकदम चुप हो जाती हैं। घण्टों बीत जाते हैं उनका शरीर प्रायः स्थिर ही रहता है। दृष्टि भी शान्त, स्निग्ध और अपलक हो जाती है। उनकी सब अवस्थाओं ही से यह दर्शित होता है कि उनका अन्तर मानों किसी विराट आनन्द में डूबा हुआ है, शारीरिक क्रियाएँ उनके लौकिक व्यवहारमात्र हैं। अनेक समय देखा गया है कि सरदी गरमी का बोध, खाने पीने का ख्याल उन्हें स्मरण कराने पर होता है। स्मरण कराने पर भी एक दम ही स्वभाविक भाव जाग्रत नहीं हो पाता है। कभी कभी मैंने स्वयं देखा है कि बहुत दिन तक एकमुखी हो बोलना, चलना, हँसना यहाँ तक कि खाने पीने में भी भूल हो जाती है। कोई कोई पूछते हैं कि श्री श्री माँ की किसी विभूति का कोई निदर्शन है? जिस सर्वमंगलमयी के

स्पंदन से ही शुष्क प्राण सरस हो उठें, जिसकी इच्छाशक्ति के प्रभाव से अलक्ष्य रूप में प्राणियों की चित्तवृत्ति अध्यात्मपथ की ओर अग्रसर हो उठे, उनकी किसी भी विभूति का परिचय न देकर मैं उन लोगों से कहता हूँ कि कुछ दिन माँ का संगलाभ कर स्वयम् ही उनकी विभूति का अनुभव कर कृतार्थ हों।

मैं और निरंजन* एक दिन शाहबाग गए। माँ और पिताजी बैठे थे, माँ के सामने कुछ चित्र जमीन पर खिंचे हुए थे। पिताजी ने बताया, "तुम्हारी माँ ने षटचक्र खींचे हैं।" माँ कहने लगीं, "आज दोपहर को फिरते फिरते सहसा इसी जगह आसन में बैठ गई। ब्रह्मतालु से नासिका ले मेरूदण्ड के आखीर तक अपनी अँगुलियों से (कहीं तीन उँगली, कहीं चार उँगली के अन्तर अन्तर) मापने लगी तो ऐसा लगा कि इन-इन स्थानों पर ग्रंथि है।" मैंने देखा कि मूलाधार के ऊर्द्ध की ओर पास ही पास सूक्ष्म से सूक्ष्मतर अनेक ग्रन्थि हैं, जिनमें दो चार प्रधान हैं। वही इस जगह अंकित हैं, मैंने स्वेच्छा से नहीं खींचा है, मेरा हाथ अपने आप ही घूम कर यह चित्र बन गए। याद रख इन सब ग्रन्थियों तथा नाड़ियों के संयोग स्थान में रूप, रस, गन्ध, स्पर्श आदि सम्भूत मनुष्य के जन्म मृत्यु के संस्कार आबद्ध हैं। वायु और प्राण रस इनमें ही से कहीं तीव्र गति तथा कहीं मंथरगति से प्रवाहित हो मनुष्य के कर्म और भाव का नियामन करते हैं। जिस प्रकार पृथ्वी के ऊपर जल, जल के ऊपर तेज, तेज के ऊपर वायु एवं

---

* इनकम टैक्स असिस्टेण्ट कमिश्नर।

वायु के ऊपर महाकाश है उसी प्रकार मनुष्य के शरीर में भी एक एक कर पाँच केन्द्र व्याप्त हैं। तनिक चिंतन करके ही समझ सकेगा कि जब मन का भाव पवित्र एवं आनन्दपूर्ण होता है उस समय प्राणवायु ऊर्द्धमुखी होती है जिस प्रकार तालाब के तलदेश में जल का उद्गम है, वृक्ष की जड़ में प्राणरस का आकर्षण केन्द्र है उसी प्रकार मनुष्य के भी मेरुदण्ड के निम्नतल में जीवनशक्ति का मूल महाशक्ति के रूप सुप्तवस्था में है। श्रद्धा और धैर्य के द्वारा बहिर्मुखी एवं अन्तर्मुखी शुद्ध क्रिया का स्पंदन वायु द्वारा जब प्रधान-प्रधान नाड़ियों में मंथित होता है तब मूलाधार की बद्ध शक्ति तत्पर हो प्रत्येक ग्रन्थि का भेद करती हुई क्रमशः जितनी ऊर्द्धमुखी हो उठती है उतनी ही साधक की जड़ता तथा संस्कारों का ह्रास होता है इन ग्रंथि भेद के साथ ही साथ बाह्य संसार के रूप रसादि के प्रति आसक्ति भी कम होती चलती है। इस ऊर्द्ध-गामी शक्ति भ्रूकेन्द्र पर पहुँचने पर (प्राण) वायु की गति सर्वत्र सरल और विशुद्ध हो जाती है तब साधक—"मैं कौन हूँ? जगत क्या है? सृष्टि क्या है? आदि स्वरूपों का कुछ अनुभव करने लगता है। ऐसी अवस्था आने पर संस्कारों का उच्छेदन होता रहता है तथा ध्यानादि की गति दिन पर दिन ऊर्द्धमुखी होती चलती है। चरमावस्था पर पहुँचने पर साधक महाभाव में लीन हो जाता है अर्थात् स्वरूपस्थिति लाभ कर समाधि भूमि पर शान्तिलाभ करता है। इन सब ग्रन्थियों के खुलने के साथ साथ पहले पहल साधक अनेक प्रकार के आवाज सुना करता है, कभी

कभी उसे ऐसा प्रतीत होता है कि शंख और घण्टे के समान की आवाजों की ये शब्द तरंगे विश्वव्यापी महाध्वनि सागर में मिल रही हैं, उस समय बाहर की कोई भी चीज तथा भाव उसके चित्त को सहज ही में आकर्षित नहीं कर पाते हैं। साधक जितना ही अग्रसर होता जाता है उतना ही उस महाध्वनि के अमृत प्रवाह की ओर बढ़ता चलता है, अन्त में उस महाध्वनि की गम्भीरता में उसका चित्त अखण्ड स्थिति लाभ कर लेता है।"

श्री श्री माँ की इस उक्ति के प्रायः दो तीन साल बाद Jus tice woodroffe की Serpent power नामक पुस्तक से 'षट्चक्र' की तस्वीरे माँ को दिखाने ले गया। माँ ने उस ओर विशेष लक्ष्य न कर हँसते हँसते मुझसे कहा, "मैं जो कह रही हूँ वह सुन।" उन्होंने वे प्रत्येक चक्र के पद्म-दल संख्या यंत्र, बीज, वर्णादि बताने लगीं। मैंने देखा कि माँ का बताया हुआ सभी चित्र के साथ में मिल रहा है। माँ ने कहा "मैंने किसी पुस्तक में अथवा किसी से ये बातें नहीं सुनी है. प्रसङ्गवश आप ही प्रकाश हो गई हैं।" माँ से और पूछने पर माँ ने कहा, "तस्वीरों में जा रङ्ग देख रहे हो, वह बाहरी सज्जा मात्र है। हम लोगों के शरीर मज्जा आदि वस्तुओं द्वारा गठित चक्र यहीं है, अन्तर केवल इतना है कि बाहर की ओर से नाभि, आँख, कान, हाथ की रेखाओं में जो विशिष्टता है उसी प्रकार चक्रों की गठन भी विभिन्न है, वायुगति तथा प्राण रस द्वारा अनेक प्रकार क्रिया, बीज मूर्ति तथा ध्वनि वहाँ लक्षित होती है। श्वास क्रिया के

संग जब सर्वप्रथम बीज आदि बाहर होते तो ख्याल उठता था कि ये सब क्या हैं ? उसी समय अपने आप ही प्रत्येक जिज्ञासा शान्त हो जाती तथा स्पष्ट और प्रत्यक्ष भाव से सब कुछ अङ्कित हो उठता कि कहाँ-कहाँ और क्या-क्या है ? उस समय प्रत्येक चक्र का रचना वैचित्र्य तेरी इन सब तस्वीरों की तरह ही देखा। उपासना, पूजा, कीर्तन, ध्यान, तत्त्व विचार और यौगिक क्रिया एकनिष्ठ भाव से होते होते अपने आप ही चित्त और भावशुद्धि हो जाती है तथा ये सब ग्रंथियाँ खुल जाती हैं। अन्यथा मनुष्य इन काम क्रोधादि चक्र से छुटकारा ही न पाता।"

एक दिन माँ सब लोगों के साथ ढाका की सिद्धेश्वरी पीठ पर गईं। यह स्थान तब उपेक्षित ही था। वहाँ आधा हाथ ऊँची तथा सवा हाथ लम्बी विशिष्ट चौकोर एक वेदी थी। माँ उसके ऊपर आसन लगा बैठ गईं। भक्तवृंद चारों ओर बैठे थे। इसी बीच में क्या देखा कि माँ ने आसन की छोटी सी जगह ही में अपने को संकुचित कर लिया, सबको ऐसा लगा मानो आसन के ऊपर माँ का केवल परिधान ही पड़ा है। माँ तो दिखाई भी नहीं दे रही थीं, सभी उत्सुक हो देख रहे थे कि अब क्या होगा ! धीरे धीरे हिलना डुलना आरम्भ हुआ और आस्ते आस्ते वेदी पर माँ सीधी होकर बैठ गईं। प्रायः आध घण्टे तक स्थिर दृष्टि से ऊपर की ओर देखती रहीं, फिर सहसा बोलीं "अपने ही काम के लिए इस शरीर को तुम यहाँ लाए हो।"

माँ ने कहा "कागज की पतङ्ग जिस प्रकार एक तागे के सहारे

हवा में उड़ती है, उसी प्रकार योगियों का शरीर श्वास और संस्कार सूत्र के बल पर शून्य में उठना, सूक्ष्म होना, वृहत् होना, अदृश्य होना आदि अनेक प्रकार के खेल कर सकते हैं। सुना है कि किसी किसी को स्वप्न में माँ के मुख से मंत्र मिला है तथा कभी मंत्र के साथ फूल भी मिला है और जागने पर देखा भी है।

जब कि माँ ने किसी को भी दीक्षा नहीं दी थी। अनेकों के मुँह से सुना है कि माँ के कहीं पर भी होने पर उन्होंने अपने घर में थोड़ी देर के लिए माँ के प्रत्यक्ष दर्शन पाए हैं।

मेरी भयानक बीमारी के समय माँ कुछ महीनों तक उत्तर पश्चिमी भाग में रही थीं। ढाका लौटने पर एक दिन माँ ने मुझसे कहा "मैं दो दिन आधी रात के समय तेरे कमरे के इस दरवाजे से आ दूसरे से चली गई थी, तब तू रोग से खूब ही तड़फ रहा था।" मेरी बीमारी बढ़ने पर रात में डाक्टर को बुलाया जाता था। खर्च की बही मिलाने पर देखा गया कि माँ की बताई हुई उन दो रातों को ही डाक्टर आया था। अनेक बार ऐसा भी हुआ है कि बहुत से आदमी बैठे हुए हैं, और वे सबके सामने ही आ जा रही हैं और उन्हें कोई देख नहीं रहा है। माँ कहती हैं "मैं तो तुम लोगों के साथ ही रहती हूँ, तुम देखना नहीं चाहते हो तो मैं क्या कर सकती हूँ ? तुम याद रखो कि तुम चाहे दूर हो या पास हो, चाहे कुछ कर रहे हो सब समय ही एक दृष्टि तुम लोगों पर ही है।"

एक बार गोयालन्द स्टेशन से माँ गाड़ी पर बैठने वाली थीं, प्लेटफार्म से गाड़ी का दरवाजा बहुत ऊँचे को था। बहुत दिनों से माँ का दाहिना हाथ स्थिरप्राय सा था। माँ के आदेश से ब्रह्मचारिणी गुरु प्रिया ने माँ का बायाँ हाथ पकड़ कर गाड़ी में चढ़ाया, उन्होंने बताया, "मुझे ऐसा लगा मानों किसी बच्चे को उठा रही हूँ।" कभी कभी माँ को खूब भारी होते भी देखा गया है।

माँ कहती हैं कि उनका चलना बैठना सब ही एक जैसा है, वह सदैव ही जाग्रत रहती हैं। यह बिलकुल सच है। क्योंकि जैसा कि देखा गया है कि कभी बिस्तरे पर से उठते ही माँ कहती हैं, "मैं अभी उस जगह से आई हूँ, वहाँ यह हुआ था।" बाद में उसकी सत्यता का प्रमाण मिला है।

मैंने अनेक समय माँ को बिजली की तरंग की तरह सहसा एक प्रकाश अथवा छाया मूर्ति के रूप में अपने समीप देखा है। कभी कभी वह छाया मूर्ति अनेक प्रकार के खेल करती है, अधिकांश समय ही वह सब सच होते हैं।

१९३० ई० के अन्तिम भाग में माँ ढाका से ३०० मील की दूरी पर काकस बाजार में थीं। मैं ढाका में सुबह बिछौने पर उन्हीं की चिंता कर रहा था। कान के पास धीरे धीरे एक आवाज आई, "शीघ्र ही आश्रम में मन्दिर की व्यवस्था कर।" सुन मात्र ही मैं चौंक उठा। मैं जानता था कि माँ किसी को भी सीधी तरह से कुछ आदेश नहीं करती हैं, लेकिन माँ के सिवा

इस प्रकार का आदेश कौन दे सकता है। ऐसा होने पर यह इतना अस्पष्ट क्यों ? काक्स बाजार चिट्ठी डाल कर पता लगाया कि इधर कई दिनों से माँ मौन थीं, उस दिन ही सुबह आठ बजे माँ ने मौन के पश्चात् कुछ कहा था। बाद में माँ के ढाका आने पर मुझे मालूम हुआ कि उस दिन सुबह ही माँ ने बात करनी आरम्भ की थी, किन्तु कोई भी स्पष्ट रूप से नहीं समझ पाया। मंदिर के निर्माण का आयोजन तभी से आरम्भ हुआ।

मृत साधु पुरुषों तथा अनेकों की आत्मा माँ प्रायः ही देखती हैं जैसा कि बताती हैं, "मेरे सामने जैसे तुम लोग बैठे हो वैसे अनेक अशरीरी भी यहाँ बैठे हैं।"

माँ कहती हैं, "किस रोग की कौन सी मूर्ति होती है यह भी देखती हूँ। इस शरीर में जब वे प्रवेश करना चाहते हैं तो मैं कोई बाधा नहीं देती है। जब मैं एक में ही सब हूँ तो त्याग और ग्रहण का तो प्रश्न ही नहीं। तुम लोगों के साथ जो आनन्द है वही उनके साथ में भी।"

१९२९ ई० मई के महीने में माँ ने ढाका छोड़ दिया किन्तु अनेक कारण वश उनकी स्वाधीन यात्रा में विघ्न हुए। अगस्त के महीने में ढाका लौट आने पर एक दिन माँ को ज्वर हो आया। शरीर में अनेक प्रकार की अस्वाभाविक क्रिया होने लगीं। माँ ने आदेश दिया कि शरीर की स्वतः स्फुरित गति के अनुसार उठाओ बैठाओ तथा लिटाओ। प्रायः एक घण्टा उसी प्रकार किया गया।

माँ ने बताया कि ये सब शारीरिक क्रिया यौगिक क्रियाएँ थीं। यह सब देख उनके जीवन के ओर से अनेक ही सशंकित हो उठे। बाद में देखा गया कि उनके सब अंग बेकाम हो गए हैं, उठते बैठते यदि कोई न पकड़े तो सब अंग प्रत्यंग शिथिल से हो गिरते पड़ते हैं। ज्वर के साथ सूजन, पेट में दर्द, रक्त दस्त तथा रक्त प्रस्राव चल रहा था। इस प्रकार कुछ दिन बीतने पर एक दिन ब्रह्मचारिणी गुरुप्रिया ने कातरभाव से कहा, "माँ, कृपा करो तुम्हारा शरीर चलाना ही मुश्किल हो रहा है।" इसके बाद शरीर में जो शिथिलता का भाव था वह तो कम हो गया किन्तु ज्वर वैसा ही रहा। माँ के आदेशानुसार पाँच छः दिन तक रोज ११ बजे से ५ बजे तक ६० अथवा ७० बाल्टी जल माँ के सिर के ऊपर डाला जाता, फिर भी ज्वर का ताप कम नहीं होता था। दवा कुछ नहीं खा रही थीं। एक दिन संध्या के समय ढाका का एक प्रसिद्ध वैद्य माँ को देखने आया वह कहने लगा, हमारा निदान शास्त्र मनुष्यों के रोगों का निदान बतलाता है। इनकी तो सभी स्वतंत्र सत्ता है!" इतने लम्बे समय तक माँ को बीमार देख सभी माँ से स्वस्थ होने की अभिलाषा कातर हो कर करने लगे। इसके दूसरे दिन सुबह ही माँ बोलीं, "भात का प्रबन्ध कर"। जो स्वयं शोथ और ज्वर के वेग से १७, १८ दिन से बिस्तरों पर पड़ी थीं, उन्हें स्वयं अपने पथ्य की व्यवस्था करते देख सब अवाक् थे। 'जो हो' आदेशानुसार दाल, चावल तरकारी तैयार की गई, तीन चार भक्तों ने माँ को चारों तरफ से पकड़ कर पथ्य कराया, थोड़ा थोड़ा सब चीज खायी।

ज्वर के बाद ऐसा पथ्य देख अनेक ही घबड़ा गए; किन्तु इसके अगले दिन ही से माँ की अवस्था सुधरने लगी।

इस प्रकार की शरीर की विकृति के प्रसंग में माँ ने बताया था, "यदि कभी भी मेरे सहज कामों में यह शरीर बाधा पाता है तो उस बाधा के फलस्वरूप क्या होता है, यही बताने के लिए ये सब विकार दिखाए। यदि वास्तव ही में रोगिणी होती तो यह शरीर एकदम ही जड़वत् हो जाता अथवा प्राणवायु ही शरीर को छोड़ देती।"

"शय्यागत अवस्था में मुझे किसी भी रोग या असुविधा का बोध नहीं था। स्वस्थ होने पर जिस प्रकार विस्तर पर लेटी रहती हूँ ठीक वैसे ही तब भी थी। मेरे शरीर के विकार तथा तुम लोगों की घबड़ाहट का साथ देख ऐसा लगता कि आनन्द का अपूर्व कीर्तन चल रहा है।"

श्री श्री माँ के कार्य कलाप देख ऐसा लगता है कि मानो प्रकृति भी उनके इच्छानुकूल चल रही है। इससे यही मन होता है कि उनकी इच्छामयी शक्ति के स्वयम् प्रकाशन की ओर लक्ष्य रख कर चलने, अपनी व्यक्तिगत इच्छा अथवा अनिच्छा के द्वन्द्व में न पड़ उनके आदेश पालन करने से श्री श्री माँ की विश्वमयी इच्छा-शक्ति के अलौकिक खेल में हम कितना आनन्द पाते तथा उन्नत होने के कितने सुयोग हमारे अदृष्ट में घटते जिनकी सीमा नहीं। बचपन में जैसे अपनी इच्छानुसार गुड़िया लेकर खेलते हैं, घरौंदे बनाकर आनन्द प्राप्त करते हैं तथा इसी प्रकार के रोज नए खेलों

में प्रवृत होते हैं उसी प्रकार आज भी माँ को अनेक प्रकार के खेलों में मत्त हैं – फिर – ऐसी आशंका कभी कभी मनमें उदय होती है।

विन्ध्याचल आश्रम* में कथा प्रसङ्ग में श्री श्री माँ एक दिन ब्रह्मचारी श्रीमान कमलाकान्त से बोलीं, "इतने दिन हो गए किंतु आज भी तुम यह न समझ सके कि मैं क्या चाहती हूँ। समझ चुकने पर यह प्रश्न और नहीं उठाता है कि तुम क्या चाहती हो अथवा आप क्या चाहती हैं? जाने दो, जिसे जितना समझना है वह उतना ही समझेगा। समझने पर तभी आत्मसम्मान, यश, प्रतिष्ठा, क्रोध, दुःख, अभिमान, अहम्भाव आदि का परित्याग करना होगा।"

यदि हम चुपचाप उनकी वाणी का अनुसरण कर उनके सत्य सजीव प्रभाव से अपने प्राणों को निर्मल कर पाते तो शायद उस परम मातृशक्ति की सनातन विलासलीला को देखने का सुयोग पा हम भी धन्य होते तथा संसार भी धन्य होता।

एक दिन रमना के मैदान में घूमते समय मैंने देखा कि माँ कुछ भी बोल नहीं रही हैं। तभी समझ गया कि माँ का मौनभाव जागृत हो रहा है। कुछ देर तक घूम फिर कर माँ लौट आईं।

* विन्ध्याचल अष्टभुजा पहाड़ के ऊपर माँ का एक आश्रम है। पूज्यपाद स्वामी अखण्डानन्द तथा तुरीयानन्द के प्रयत्न तथा अर्थ से यह प्रतिष्ठित हुआ। वहाँ आज भी अखण्ड अग्निरक्षा के लिए यज्ञकुण्ड की व्यवस्था है।

प्रायः ८, १० दिन तक चुप रहीं। इस समय इशारा, संकेत तथा हँसना सभी बोलने के साथ ही स्थगित कर दिया था। अपने ही भाव में बैठी रहती थीं, किसी के कुछ कहने सुनने पर भी उधर नहीं देखती थीं। वे एक बुद्ध प्रतिमा की भाँति लगती था। खाने के समय जितना आवश्यक होता उतनी देर मुँह खुला रखतीं बाद में मुँह बन्द कर लेतीं। मौनावस्था में कई एक दिन तो ऐसा ही लगा मानों बाहरी दुनिया से सभी सम्पर्क टूट गया है। आठ दस दिन बाद अस्पष्ट दो एक बात निकलीं। तब देख कर ऐसा लगता मानों माँ फिर से बोलना शुरू कर रही हैं। इस प्रकार तीन दिन बीतने पर माँ फिर से स्वाभाविक अवस्था में आतीं। माँ की इस प्रकार अवस्था देखने का सौभाग्य मुझे दो तीन बार मिला है। उस समय की उनकी स्थिर प्रशान्त मूर्ति सौम्य दृष्टि और उज्ज्वल मुखश्री को देख हृदय विचलित हो जाता था। अपलक दृष्टि से उनकी ओर देखने पर भी तृप्ति बोध नहीं होती। माँ जब प्रथमावस्था में तीन बरस तक मौनी थीं तब अनेक ही उनको देख कर गूँगा समझते थे तथा दुःख प्रगट करते हुए कहते थे "विधाता का विधान ! इतनी सद्गुण सम्पन्ना सुन्दरी वधू को गूँगा बनाया !!" माँ कहतीं, "मौनी होना हो तो मन प्राण एक साथ ही एक चिंता में घनीभूत कर बाहर भीतर से पत्थर की तरह हो जाओ। यदि केवल वाक् संयम ही करना चाहता है तो वह अलग बात है।"

समाधि-भाव

साधन की चरम अवस्था क्या है यह जानने के लिए श्री श्री माँ ने विभिन्न स्तर की साधन अवस्थाओं का उल्लेख किया था :—

चित्त समाधान कुछ अंशों तक सूखी लकड़ी में आग लगाने के समान है। गीली लकड़ी का पानी सूखने पर जिस प्रकार धक् धक् करके आग जलने लगती है उसी प्रकार उपासना की एकाग्रता में जब वासना, कामना आदि कम हो जाती है तो चित्त हलका हो जाता है। उस अवस्था को ही चित्त समाधान या भावशुद्धि कहते हैं। इस प्रकार की अवस्था में किसी किसी को भावोन्माद होता है। एक परमार्थ सत्ता का आश्रय ले यह विशेष विशेष भावावेग में प्रकट होती है।

इसके बाद 'भाव समाधान' आता है। जिस प्रकार दहकता हुआ कोयला; एक ही सत्ता, एक अखण्डभाव की तन्मयता में शरीर अवश रहता है।

साधक घंटे पर घंटे जड़ भाव में बिता देता है और अन्तर में भाव प्रवाह एकमुखी हो चलता रहता है। इसकी परिपक्व अवस्था में कभी कभी एक सत्ता का आश्रय लेकर अखण्ड भाव तरङ्ग बाहर भीतर एक ही खेलती रहती है। इसको भाव समाधान कहते हैं। जिस प्रकार किसी पात्र में उसके माप से अधिक

जल डालने पर वह भर कर छलकने गिरने पड़ने लगता है, उसी प्रकार एक अखण्ड भाव के प्रकाशन में भावावेग विश्वमय विराट स्वरूप में विगलित हो पड़ता है।

तीसरी स्थिति का नाम 'व्यक्त समाधान' है। जिस प्रकार जलते हुए कोयले, भीतर बाहर से एक ही तरह की अग्नि-दीप्ति, जीव इसी अवस्था में एक सत्ता में स्थिर हो विराजता है।

पूर्ण समाधान अवस्था में साधक के सगुण और निर्गुण का द्वन्द्व चला जाता है।

जिस प्रकार जलते हुए कोयले का राख की आग। साधक इसी अवस्था में एक अकथनीय भाव में स्थिर हो जाता है। अंतर बाहर का कोई भेद नहीं रहता है—"शान्तंशिवमद्वैतम्" अवस्था। सब भावों का स्फुरण इस अवस्था में लीन हो जाता है।

श्री श्री माँ की समाधिभाव का भी एक अपूर्व ही दृश्य है। सौभाग्यवश मैंने ऐसी अवस्था अनेक बार देखी। इस जगह कई एक दृश्यों का प्रसंग उल्लेख करता हूँ।

किसी दिन या तो चलते चलते, अथवा हठात् असावधानी से कमरे में आकर बैठते ही माँ हँस हँस कर किसी के साथ कुछ बात करते करते उनकी दृष्टि प्रायः स्थिर सी हो जाती एवं असाधारण भाव से सब अंग शिथिल हो जाते तथा माँ निहाल हो पड़ जातीं।

तब देखा जाता कि डूबते हुए सूर्य की तरह उनके लौकिक भाव और व्यवहार तिल तिल करके न जाने किस ओर अवसान

प्राप्त से हो जाते। इसके बाद श्वास की गति धीमी होकर कभी स्थगित सी हो जाती, वाक्शक्ति बन्द हो जाती, आँखें भी बन्द हो जातीं। सारा बदन ठंडा पड़ जाता, किसी किसी दिन हाथ पैर लकड़ी की तरह सख्त हो जाते, कभी अंग प्रत्यंग कपड़े की तरह शिथिल हो जाते, जिस तरफ हिलाते उसी तरफ ढल जाते।

मुख प्राण रस से लाल हो उठता, दोनों कपोलों पर दिव्य आनन्द की ज्योति जग उठती तथा ललाट पर निर्मल शान्त स्निग्धता छा जाती। देह की समस्त क्रिया स्थगित हो जाती फिर भी सम्पूर्ण शरीर कीरोमावलियों से अपूर्व दीप्ति निकलती थी। इस समय सबको ही ऐसा लगता कि माँ समाधि की गम्भीरता में लवलीन होती जा रही हैं। इस तरह से १०, १२ घण्टे बीत जाते, उनको सचेतन कराने की अनेक चेष्टा होतीं किन्तु सभी निष्फल होता।

मैंने स्वयम् माँ को अनेक बार चैतन्य (जगाने) कराने की व्यर्थ चेष्टा की है। हथेली और पैरों के तलवे जोर से मल, शरीर को जोर से सहलाने से भी कुछ प्रतिक्रिया नहीं होती। प्रकृतावस्था आने के समय आप से आप चेतन हो उठतीं। वाह्य व्यवहार के ऊपर कुछ निर्भर न था।

जब माँ फिर से सांसारिक दृष्टि से चेतन होने लगती हैं, तब श्वास क्रिया अङ्ग प्रत्यंगों का हिलना डुलना वही स्वाभाविक गति से धीरे धीरे आरम्भ होने लगता है, किसी किसी दिन जरा देर बाद ही फिर स्थिर सी, अचेतन हो जातीं मानों शरीर फिर

पूर्वावस्था में ही जाना चाहता है। आँखें अनेक देर तक अनिमेष देखती रहतीं फिर आप से आप वन्द हो जातीं।

जब संज्ञा होने के क्रमानुसार सभी लक्षण दृष्टिगत होते तब उनको विठाकर कुछ बातें करने की चेष्टा की जाती। ऐसी अवस्था में अनेक समय देखा जाता कि वे बाहरी दुनिया की किसी आवाज को न सुन अन्तर्जगत में ही लीन हो जातीं। ऐसी हालत में पूरा होश आने तक बहुत समय लगता। शरीर बहुत ही धीरे धीरे प्रकृतावस्था में लौटता।

एक बार ऐसा भी देखा कि समाधि के वाद उनको बड़ी मुश्किल से चलाया गया। थोड़ा बहुत खा कर फिर संज्ञाहीन हो घण्टों पड़ी रहतीं।

समाधि के बाद स्वाभाविक अवस्था आने पर एक विशेष आनन्द उनके समस्त शरीर से स्फुरित होता दीखता। होश आने के एक दम बाद कभी हँसना, कभी रोना और कभी हँसना रोना दोनों साथ चलता। कभी मुख मौन प्रसन्नता का दर्शन होता।

समाधि की अवस्था में कभी कभी माँ का मुँह मुर्दे के समान पीला और निस्तेज हो जाता था, मुँह देखकर आनन्द अथवा अवसाद कोई भी अनुभूति नहीं होती। ऐसा होने पर हमेशा यह देखा गया कि समाधि भंग होने में तथा प्रकृतावस्था में लौटने तक अनेक समय लगता था। १९३० ई० में रमना आश्रम में आने के बाद समाधि में इस प्रकार मृतवत् अवस्था अनेक बार देखी गई, एक बार ऐसी समाधि में ३, ४ दिन बीत जाते थे। समाधि

के आरम्भ से अन्त तक जीवन का कोई लक्षण ही नहीं दिखता था एवं इस प्रकार मृतक तुल्य शरीर में प्राणों का किस प्रकार संचार होता होगा इसका कोई अनुमान भी नहीं लगा सकता है। देह ठंडी हो जाती थी एवं स्वाभाविक अवस्था में आने पर भी बहुत देर तक शरीर ठंडा ही रहता था।

समाधि भंग होने पर आन्तरिक अवस्था के सम्बन्ध में माँ को कभी कुछ पूछने पर माँ बतातीं, "सब प्रकार के काम और भावों के पूर्ण समाधान का नाम समाधि है यही ज्ञान और अज्ञान के अतीत की अवस्था है। तुम लोग जिसको सविकल्प कहते हो वह भी इसी चरमावस्था को पहुंचने के लिए है, यह भी एक प्रकार की साधना है। सबसे पहले रूप, रस, गन्ध, स्पर्श तथा शब्दादि पञ्चभूतों में से कोई एक तत्त्व, वस्तु या विचार लक्ष्य हो सम्मुख आता है और उसी को लेकर शरीर ध्यान कर स्थिर होता है। उसके बाद यह लक्ष्य सर्वमय होकर 'अहंभाव' को लय कराता हुआ एक ही सत्ता में प्रतिष्ठित कर देता है। इस प्रकार की अवस्था यदि उन्नति लाभ करे तब उसकी चरम अवस्था में वह एक सत्ता भी कहीं विलीन हो जाती है तब क्या रहा और क्या गया इसको समझाने के लिए कोई भाषा व अनुभूति नहीं रहती।

कभी कभी किसी प्रत्यक्ष कारण के बिना भी माँ के शरीर में अनेक असाधारण लक्षण प्रकाशित होते हैं। कभी लम्बी साँसें भरतीं, सारा शरीर मुड़ने सा लगता, कभी इधर उधर को टेढ़ा सा हो जाता; ऐसे समय या तो माँ लेट जातीं नहीं तो हाथ, पैर

सिर आदि मिला कर कुण्डली सी बना लेतीं। उस समय चेत रहता, कुछ पूछने पर धीरे धीरे भावावेश में कुछ थोड़ा बहुत बोलतीं।

ऐसी अवस्था के सम्बन्ध में माँ से पूछने पर पता लगता कि वे अपने मूलाधार से सहस्रार तक मेरुदण्ड में से एक सूक्ष्म प्राण प्रवाह अनुभव करतीं, उसके साथ साथ समस्त शरीर यहाँ तक कि रोमावलियों में एक अकथनीय अपूर्व भावावेग का अनुभव करतीं और इस महानन्द में शरीर का अंग प्रत्यंग थिरक उठता। जो देखतीं, जो स्पर्श करतीं सभी में अपनी निज की सत्ता का अनुभव करतीं। शरीर का कोई स्वतन्त्र धर्म नहीं रहता।

इस समय मेरुदण्ड को अच्छी तरह मलने पर एवं शरीर की ग्रंथियों को दबाने पर थोड़ी देर के लिए चुप रहकर फिर अपनी स्वाभाविक अवस्था में आ जातीं। ऐसी अवस्था में माँ मूर्तिमती आनन्दरूपिणी के रूप में प्रकाशित होतीं एवं उनकी बातों, दृष्टि तथा व्यवहार में अपूर्व प्रेम की दीप्ति होती।

साधारण अवस्था में भी कभी कभी ऐसा होता देखा गया है कि माँ लेटी-लेटी बातें कर रही हैं, हँस रही हैं किन्तु हाथ पैर खूब ठंडे हैं, नाखून नीले हो गए हैं, बहुतों के हाथ पैर मलने पर भी कुछ नहीं हो रहा है, जब कि उन लोगों के हाथ ठंडे हो जाते। एक दिन इस अवस्था में से प्रकृतावस्था में आते आते १२ घण्टे लगे।

एक दिन आश्रम में शाम होते ही माँ समाधिस्थ हो गईं।

दीदी माँ (माँ की मातृदेवी) माँ के पास वाले कमरे में थीं। पिताजी भी कमरे थे। रात के दो बजे होंगे मैं बरामदे में बैठा माँ के श्री चरणों का ध्यान कर रहा था। सहसा मानों प्राणों के भीतर माँ के चलने का कुछ आभास हुआ। आँख खोल कर देखा—कुछ नहीं। कमरे में कुछ शब्द सा सुना। मैंने जाकर लालटेन की रोशनी में माँ के दरवाजे पर भींगे हुए दो पैरों के चिन्ह देखे।

भीतर जाकर देखा माँ पहले की तरह ही बिस्तरों पर लेटी हैं, दीदी माँ से पूछा कि क्या माँ बाहर गई थीं? उन्होंने कहा, "नहीं, तुम्हारी माँ कहीं नहीं गईं।" रात बीत गई। दूसरे दिन सुबह कुछ देर के लिए माँ होश में आईं, किन्तु फिर वही अवस्था। उसके दूसरे दिन माँ को फिर चेत तो अवश्य हुआ किन्तु स्वाभाविक अवस्था में आते आते ३, ४ दिन लगे।

मैंने इस सम्बन्ध में माँ से कुछ दिनों बाद कहा, "सुना है कि समाधि की अवस्था में संज्ञाशून्य शरीर से चलना फिरना सम्भव नहीं है, किन्तु उस रात को मैंने आपके कैसे पदचिन्ह देखे?" माँ ने कहा, "पुस्तकें क्या सब कुछ समझा सकती हैं?"

श्री श्री माँ से एक दिन पूछा, "साधक के लक्षण क्या क्या होते हैं?" माँ कहने लगीं, "जब साधक अपने चित्त की शुद्धि कर कुछ उन्नतावस्था में पहुँचता है, उस समय उसका भाव बालकवत्, पिशाच या जड़वत् हो जाता है, कभी वह साधारण लौकिक भावों की तरंग ही में बहता है। किन्तु इन सब परिवर्तनों में भी

उसके चित्त को एकमुखी गति लक्ष्य की ओर ही रहती है। ऐसी अवस्था में लक्ष्य-च्युत होने पर उसका वहीं अन्त है।"

"कर्म प्रवृत्त हो जिस क्रम से साधक अग्रसर होता है उसका सब व्यवहार एक लक्ष्य के द्वारा ही प्रकाशित होता है। जैसा कि देखेगा कि वह जड़वत् और अचेतन अवस्था में तो पड़ा रहता है किन्तु जाग्रत अवस्था में सब भावों में ही मानों आनन्द की प्रति मूर्ति है। क्रमशः एक समय ऐसा आता है कि जब चलना फिरना, सोना बैठना, सब लोक व्यवहारों में मानों वह मूर्तिमय आनन्द है, तब बाहर भीतर वह एक अपूर्व आनन्द सत्ता में परिणत हो जाता है।

"इसके बाद एक ऐसी स्थिति आती है जहाँ पहुँचने पर उसका एक सत्ता का संस्कार भी स्खलित हो जाता है। तब उसको साधारण विवेक बुद्धि से समझा नहीं जा सकता। इस प्रकार की अवस्था में उसके देह स्पन्दन स्थगित हो जाते हैं उस समय देह त्याग करने की सम्भावना भी रहती है किन्तु जिसमें संसार के कल्याण करने का संस्कार रहता है वह इस अवस्था में भी निर्दिष्ट समय तक अपना शरीर धारण कर सकता है। सभी अवस्थाओं में उसका एक अपरिवर्तित रूप रहता है। यह हमारी समझ की भूल है कि उसको देहधारी जीव समझ हम परिवर्तनशील समझते हैं।

"योगबल से जो शरीर त्याग करते हैं उनमें तथा उपरोक्त अवस्था के साधकों में केवल यही अन्तर है कि योगी अपनी

स्वेच्छा से शरीर त्याग करते हैं। देह त्यागने के समय तक देह संस्कार रहते हुए वे योगक्रिया में प्रवृत्त रहते हैं। जो महायोग अथवा निर्विकल्प समाधि में देह त्यागते हैं उनकी स्वकृत किसी क्रिया की अपेक्षा नहीं रहती। पूर्व के साधन संचित कर्मफल के शेष होने पर उनकी देहत्याग आप से आप हो जाती है। उनकी जन्ममृत्यु का कोई संस्कार नहीं रहता है।"

श्री श्री माँ ने एक दिन और प्रसंग वश बताया :—

(१) अपने अपने भावानुसार एकनिष्ठ ध्यान तथा धारणा से चित्त शुद्धि होती है।

(२) इसके बाद एकनिष्ठ भाव साधना से खण्ड-खण्ड भाव एक सूत्र में गुँथ जाते हैं।

(३) फिर खण्ड-खण्ड भावधारा एकमुखी हो जाती है तथा साधक अन्तर, बाहर से जड़वत् हो जाता है।

(४) इसके बाद एक सत्ता का आश्रय ग्रहण कर साधक अखण्ड भाव में प्रतिष्ठित हो जाता है।

माँ सब समय ऐसी बातें नहीं बताती हैं अथवा बात करतीं करतीं सहसा चुप हो जाती हैं। हमेशा ही बहुत से भक्त उन्हें घेरे रहते हैं। ऐसे समय भक्तों के कल्याण के लिए जब जो कुछ बोले वह सब लिखना भी सम्भव नहीं है। अनेक विषय तो सबको सहज ही में समझ नहीं आ सकते।

श्री श्री माँ इस प्रकार सार्वजनीन रूप में उपदेश देती हैं कि बहुधा उसका यथार्थ मर्म समझना हम लोगों की समझ से

बाहर है। फिर भी उनके श्रीमुख की पवित्र वाणी जब जिसके हृदय को आन्दोलित कर देती है तो वह अपने तुच्छ ज्ञान के अनुसार जो कुछ समझ पाता है उसका प्रकाश करता है। हिमालय की अनन्त जलराशि कितने नद-नदियों में प्रवाहित हो कितनी ही ऊसर भूमि को हरित भूमि बनाती है, उसका अनुमान करना सहज नहीं है। इन असंख्य नद-नदियों से हिमालय की कुछ घटती तथा बढ़ती नहीं है। किन्तु उसके द्वारा जगत का निरन्तर कल्याण होता रहता है।

श्री श्री माँ के स्पर्श, इंगित, बातों, हँसी द्वारा हमारे जीवन में प्रतिक्षण कितना परिवर्तन होता रहता है यह बताना कठिन है हम लोगों के नित्य प्रति जीवन की छोटी छोटी घटनाओं पर उनके आशीर्वाद का क्या स्थान है यह सब बताना माँ की महिमा को कम करना है यह धारणा निर्मूल है। उसके द्वारा उनके नाम का ही जय होता है जो अनजाने में हमें सन्मार्ग की ओर अग्रसर करा देता है।

लीला खेला

श्री श्री माँ की चिरज्योतिर्मयी हास्य मुखी मूर्ति, बालकवत् सरलता, विनय, हास्यकौतुक, उनकी हृदय पूर्ण एकरसता का जिन्होंने भी दर्शन किया है वे मुग्ध हो गए। उनकी बातों में, दृष्टि में, प्रत्येक भावभंगी एक ऐसी असाधारण मधुरता है कि उसकी तुलना कठिन है। उनके शरीर से, प्रत्येक साँस से, उनके वस्त्रों में से पवित्रता की दिव्य गंध आती रहती है। उनके गान के स्वर में प्राणों की पवित्र भावनाओं का निर्भर की शीतलधारा की तरह सुन्दर प्रवाह है।

वे स्वयम् निर्मुक्त, विरागी, अनन्त आकाश की तरह निर्लिप्त होने पर भी सबको अपनी ओर खींचती है वे सब धर्मों, सब जातियों के मनुष्यों पशु पक्षी वृक्षलता सब ही में एक अखण्ड प्राणलीला का संचार देख सबको एक ही आनन्द का प्रतिरूप मान सबके प्रति एक समभाव से अनुराग, श्रद्धा और सम्मान का प्रदर्शन करती हैं।

माँ कहती हैं "मेरे लिए नया कुछ देखने, सुनने और बोलने को नहीं है।" फिर भी कभी कभी साधारण सी चीज लेकर इस प्रकार प्रसन्न होती हैं मानों किसी बच्चे के हाथ गुड़िया पड़ गई है।

भक्तों के संग माँ की कितनी लीलाएँ देखी हैं जिनका कि अन्त नहीं। एक बार सबकी इच्छा हुई कि श्री श्री माँ को बाल-

कृष्ण रूप में देखें और फिर किशोर कृष्ण रूप में सजावें। सबने मिलकर माँ को उसी तरह सजाया। एक ही माँ दोनों रूप में क्या सजीं! बाल रूप और किशोर रूप दोनों ही में उनकी मुख-श्री कितनी समुज्ज्वल हो उठी! दृष्टि की स्निग्धता ललाट की शान्त विशालता, मुख का पुनीत लावण्य, देहभंगी की कोमलता किसी अज्ञात दिशा से सब एकत्र हो माँ के मुख की शोभा की वृद्धि कर जो दिव्यज्योति प्रदान कर रही थीं वह विचारणीय है वर्णनीय नहीं। यह केवल असाधारण ही नहीं वरन् अलौकिक तथा अभूतपूर्व दृश्य था।

बाल कृष्ण रूप में माँ की हँसती हुई भंगी का चित्र लिया गया। उनकी हँसी में मानों शरीर का प्रत्येक अणु परिमाणु तक भाग ले रहा था। हँसी की ओट में पवित्रता का एक अपूर्व प्रभाव माँ की मुखश्री को ओजस्वी बनाए था। सभी भक्त इसको लक्ष्य कर रहे थे ऐसी पावन पुनीत हास्य कोई प्राकृत मनुष्य कर सकता है, यह कल्पनातीत है।

जहाँ श्री श्री माँ बैठीं वहाँ समवेत भक्तों के हृदय में उनके भावों के अनुरूप ही निर्मल तथा माधुर्य्य का भाव फूट पड़ा। जिस प्रकार श्री कृष्ण को यशोदा बाल रूप में देख मोहित होतीं, श्रीदाम और सुदामा सख्यभाव से ओत प्रोत हो उठते, गोपी वृन्द माधुर्य भाव मग्ना हो उठतीं उसी प्रकार माँ के भक्तों ने भी अपनी भावना के अनुरूप ही माँ का दर्शन पाया।

बचपन ही से माँ का यही अपूर्व प्राण भरा, मन भरा खेल

चला। उनके साथ खेले बिना उनकी सहेलियों को आनन्द ही न होता था। बाद को भी क्या बच्चा, बूढ़ा, जवान सभी माँ के पवित्र संसर्ग में आकर एक अकथनीय आनन्द से मुग्ध होकर माँ से बार बार पूछते, "माँ, अब फिर कब मिलोगी ?" माँ जहाँ भी रहती हैं वहाँ आनन्द की सरिता बह जाती है, एक नूतन भाव से उद्दीप्त हो हजारों आदमी फिर से सजीव हो उस दिव्य भाव में नाच से उठते हैं और फिर जब माँ वहाँ से चल देती हैं तो वह स्थान महाशून्य में बदल जाता है। कभी कभी ऐसा भी देखा गया है कि माँ के बिखरे हुए वेश, ढीली ढीली चाल को देख उन्हें पागल समझ कोई कोई डर कर उनसे दूर जाने की चेष्टा करता है किन्तु फिर भी कौन सा अज्ञात आकर्षण उसे ऐसा नहीं करने देता है।

दैनिक जीवन के साधारण लोक व्यवहार में उनकी जिस असाधारण शक्ति का विकास होता देखा गया है उसकी सीमा नहीं है। श्री श्री माँ से इस विषय में कुछ पूछने पर माँ कहती हैं, "साधारण और असाधारण सब तुम्हारे ही लिए है, मैं तो सब समय सब अवस्था में एक जैसी ही हूँ।" और भी कहती हैं, "सब ही तो खेल है, तुम लोगों को खेलने की साध है, इसलिये हँसी तमाशे में भी इस शरीर को ले जाते हो। यदि यह शरीर स्थिर, धीर, गम्भीर होकर रहता तो तुम दूर-दूर ही रहते। सुन्दर रूप से आनन्द का खेल खेलना सीखा ऐसा होने से खेल ही में खेल का चरम पाओगे—समझे !"

जो साधारण के लिए ज्ञानातीत है वही उसके लिए असाधारण है; किन्तु जो विभिन्न भावों को एक-रस कर अद्वैत आत्मानन्द में लीन हों, उनकी स्वतः स्फूरित विभूति खेलों को कभी जीवभाव, कभी ईश्वरभाव, कभी ब्रह्मभाव न कह और क्या कहें ? माँ के शरीर में स्वेच्छा नामक वस्तु का तो प्रकाश ही नहीं है। कभी तो भक्तों की सद्बुद्धि और शुद्धभाव के लिए नाना प्रकार की अलौकिक विभूतियों का प्रकाश होता रहता कभी श्रद्धालु की एकांत कामना ही माताजी के लौकिक व्यवहार से दृष्टिगत होती है। माँ कहा कहती हैं "यह शरीर तो एक ढोल है, जो जिस ताल से बजावेगा वही आवाज सुनेगा मुझे तो ऐसा दीखता है कि सब जगह ही एक खेल चल रहा है।"

१९३२ ई० जून के महीने में जिस दिन माँ ढाका छोड़ कर आईं उसके पहले दिन पाँच बजे के समय रमना आश्रम में अनेक स्त्री, पुरुष, लड़के, लड़की प्रसाद के लिए बैठे थे, माँ भी वहां संग ही थीं। इसी बीच में काली घटा छा गई तथा सब पानी बरसने की आशंका करने लगे। इसी समय एक दूसरा दल भी आकर खाने बैठ गया। जिन जिन का भोजन समाप्त होता जा रहा था, उन लोगों को उठने को कह माँ स्वयम् वहीं बैठी रहीं। जब सबका खाना शेष हो गया तो माँ बोलीं "मैं स्नान करूँगी" शाम के समय स्नान को सुन अनेकों ने मना किया किन्तु माँ भला कब किस को सुनने वाली हैं। बहस हो रही था कि जोर से मेंह पड़ने लगा। सारा आँगन पानी से भर गया। माँ इतने

पानी और मेंह में अपूर्व भाव से इधर उधर चलने लगीं। साथ में अनेक स्त्री बच्चे, बढ़े बूढ़े अपने वस्त्रों की चिंता न करते हुए कीर्तन करने लगे। रात को ९ बजे सब लोग अपने घर लौटे। इनमें से कोई कोई बीमार भी था किन्तु किसी को कुछ न हुआ।

प्रायः देखा गया है कि माँ हँसते हँसते आँधी, मेंह लड़ाई झगड़ा थमा देती हैं।

माँ स्वभाव ही से थोड़ा खाती हैं, इतना कम खाती हैं कि कल्पना भी नहीं की जा सकती है। शरीर से जब नाना प्रकार की योगक्रिया का प्रकाशन हुआ था तब माँ ने निर्जला उपवास तक किया। सुना है कि क्रियाओं की समाप्ति पर ही माँ को खाने की सुधि आती थी। जब माँ थोड़ा खाती हैं अथवा बिलकुल भी नहीं खाती तब माँ की मुखश्री उज्ज्वल, शरीर स्वस्थ तथा चित्त में प्रसन्नता भरपूर रहती है। कम खाने के अनेक नियम उनकी क्रियाओं से पहले ही बन जाते थे। पाँच महीने माँ ने केवल रात्रि में कुछ खाकर बिताए। तीन ग्रास दिन में तथा तीन ग्रास रात में खाकर आठ नौ महीने बिताए। पाँच छै महीने दिन में दो बार थोड़ा पानी और फल खाकर काटे। सप्ताह में केवल दो दिन दोनों समय थोड़ा कुछ अन्न खातीं बाकी दिन फल खाकर काट देतीं। इस प्रकार छै सात महीने बिताए १९२४ ई० से खाना स्वयम् अपने हाथ से नहीं खा पाती थीं मुँह के पास जाते ही हाथ से ग्रास गिर जाता था। हाथ में कुछ पीड़ा हो यह भी बात नहीं थीं। उस समय एक नूतन व्यवस्था और की, जो माँ खिलाता था

उसकी दो उँगलियों से जितना अन्न उठता था वह दिन में दो बार मात्र खाकर चार पाँच महीने काटे। उन दिनों हर तीसरे दिन एक बार थोड़ा सा पानी पीती थीं। पाँच छै महीने तक सुबह तीन चावल के दाने तथा रात को तीन चावल के दाने और पेड़ से अपने आप गिरा हुआ दो एक फल खाकर अनेक दिन व्यतीत किए। कभी कभी अन्न मुँह से लगा कर ही गिरा देती थीं। फिर ऐसा भी किया कि जो जन उन्हें खिलाता वह एक साँस में जितना खाना पानी पिला सकता उतना केवल खातीं, इस तरह भी दो तीन महीने नियम किया। यज्ञाग्नि पर एक छोटे डिब्बे में एक छटाँक चावल दाल (दोनों मिलाकर) उबाल करके भी आठ नौ महीने खाए। फिर कभी केवल साग सब्जी उबाल कर थोड़े सा दूध अथवा दो एक रोटी खाकर बहुत से दिन काटे। अनेक समय तो बिना कुछ खाए भी रहीं।

एक बार जब चावल खाना प्रायः बन्द सा हो गया तब चावल पहिचान भी नहीं पाती थी। शाहबाग में एक कहारिन नौकरानी थी, वह खाने के बैठी। उसको खाते देख माँ हँसते हँसते कहने लगीं "यह क्या खा रही है? क्या सुन्दर रीति से मुख में देती है, चबाती है और खाती है—मैं भी खाऊँगी।" यह कह उसकी पत्तल के बराबर जा बैठीं। एक दिन एक कुत्ता चावल खा रहा था, वहाँ भी पहुँच रोती हुई सी बोलीं "मैं भी खाऊँगी, मैं भी खाऊँगी।" उपरोक्त भावों में देखा जाता कि यदि उनको कोई बाधा देता तो वे बच्चों की तरह जमीन पर लेट कर

जिद करतीं। अन्त में माँ ने स्वयम् बताया "मनुष्य त्याग करने की चेष्टा करता है, किन्तु मेरी विपरीत अवस्था है, मैं जिससे त्याग न हो वह व्यवस्था करती हूँ। तुम लोग याद करके तीन चावल के दाने खिलाया करो नहीं तो जैसे अपने हाथ से खाना छूटा वैसे विलकुल खाना ही न छूट जाए।"

जो माँ को खिलाया करते उन्हें बहुत सावधान रहना पड़ता कि कहीं एक तिनका भी ज्यादा न दे दें। खूब शुद्ध और संयत हो कर खिलाना होता तथा खाने के वर्तन और सब वस्तुएँ साफ कर रखनी होतीं। अन्यथा होने से माँ खाना निगल ही न पातीं, मुँह दूसरी ओर को फिर जाता था शरीर आसन पर से ही उठ जाता। माँ कहतीं "इस शरीर और जमीन (पृथ्वी) में कुछ अन्तर नहीं है मैं तो जमीन पर या किसी भी जगह पर किसी भी भाव से कुछ रख दो, सब खा सकती हूँ, किन्तु तुम लोगों को सिखाने के लिए आचार, निष्ठा, कर्तव्य पालन सब आवश्यक है, इसी लिए मेरा ऐसा रूप हो जाता है।"

अनेक समय तक इतना कम खाने पर भी दुनिया के किसी काम में माँ को दुर्बल या क्लान्त नहीं देखा। बाद में धीरे धीरे सब काम आप से आप बन्द होते गए, खाना बनाने या कोई भी काम करने गईं तो शरीर वश में नहीं रहता था। किसी किसी दिन आँच से हाथ पैर तक जल गए अथवा अन्य कोई व्यथा हो गई, किन्तु इन सब दुर्घटनाओं की अनुभूति माँ को कुछ न होती थी। माँ कहती हैं "इच्छा करने से कुछ छोड़ा नहीं जा

सकता है, कर्म को पुर्णाहुति के साथ साथ त्याग आप से आप हो जाता है।"

१९२६ ई० मई महीने से आहार सम्बन्धी नियम कुछ शिथिल हुए। किन्तु जो भी खातीं, बहुत ही कम, बच्चों की तरह। हाथ से खाना बन्द कर देने के चार पाँच साल बाद सबने माँ से फिर से अपने हाथ से खाने का अनुरोध किया, माँ को भी कुछ वैसा ख्याल हुआ · खाना लेकर बैठीं, कुछ थोड़ा सा मुँह में दिया, बाकी बाँट दिया तथा कुछ धरती पर गिरा दिया, खाना कुछ हुआ नहीं। इसके बाद से फिर किसी ने खुद खाने के लिए अनुरोध न किया। माँ बोलीं "मैं देखती हूँ, सभी तो मेरे हाथ है, अपने ही हाथ से खाती हूँ।"

श्री श्री माँ की घर प्रबन्ध, खाना बनाने की पद्धति तथा पवित्रता एवं खाना परोसने तथा अतिथि सत्कार करने में प्रसन्नता आदि छोटी उमर ही से दिखाई देता था। जब भी जो किया वह सुव्यवस्थापूर्ण था। ताँत पर कपड़ा बुनना, सिलाई, ऊन का काम, बेंत का काम आदि सभी काम खूब सुन्दर रूप से करतीं। बहुत से काम जो हजार चेष्टा पर भी कोई न कर सके माँ उसे सहज ही में कर लेती थीं। सब लोग देख सुन कर मंत्र मुग्ध से रहते थे। उनकी बनाई हुई तरकारी दाल का स्वाद भी अपूर्व होता, इसलिए निमंत्रण के समय सबके अनुरोध के कारण खाना बनाते समय माँ को उपस्थित होना ही पड़ता था।

छोटे बड़े सबको खिलाने तथा पहिराने में माँ को बड़ा आनन्द मिलता था, स्वयम् न कुछ खा, न पहिन दूसरों को तृप्ति देतीं। एक गुजराती साधू एक बार शाहबाग आए। माँ ने अपनी अपनी साड़ी के आँचल से उनका आसन पोंछा तथा खूब मधुरता और विनय से खाना खिलाया। खाने की चीजें थाली में इस सुन्दर भाव से सजाई गईं कि मानो वे सेवा और श्रद्धा से भरपूर हो गई हों। उन महात्मा ने कहा "आज तो जगत जननी के हाथ से खाया इतने आदर से तो कभी किसी ने न खिलाया।"

जितने दिन कर सकीं उतने दिन माँ ने घर की माँ की तरह सब बच्चों को (सन्तान) खुद बना कर प्रसाद दिया। उनके हाथ का प्रसाद अनेकों के हृदय में अनिवर्चनीय आनन्द का संचार करता। अनेक समय प्रसादादि देते समय भी अनेक अलौकिक घटनाएँ घटीं। एक दिन निरंजन की स्त्री कुछ संतरे ले गईं माँ उठकर प्रत्येक को एक एक संतरा देने लगीं, कारण सभी को साध रहती है कि माँ के हाथ से लें। उपस्थित लोगों की संख्या देखते हुए संतरों के कम पड़ने की सम्भावना थी। किन्तु माँ की ऐसी लीला कि सभी को मिल गए। एक बार निरंजन के यहाँ कीर्तन में पचास साठ आदमियों के प्रसाद का आयोजन था किन्तु प्रायः १२० व्यक्ति उपस्थित थे। माँ यह सुनकर जहाँ अन्न व्यंजन था वहाँ कमरे में जाकर खड़ी हो गईं। जब सब प्रसाद ले चुके तो भी कुछ बच गया।

आश्रम में कितना खाने का सामान और कपड़ा माँ के लिए

आता था। स्वयं थोड़ा सा लेकर व कपड़े को शरीर से छू कर मात्र सबको सब कुछ बाँट खूब जोर से हँसतीं बहुत से बहुमूल्य सोने चाँदी के गहने आदि भी माँ को भेंट करते थे कभी तो माँ के दोनों हाथ शंख की, काँच की तथा सोने की चूड़ियों से भर जाते थे। वे सब की ही वस्तुएँ एक भाव से ग्रहण करतीं, किसने क्या दिया व किसने क्या लिया या रख दिया इस ओर उनकी दृष्टि ही न होती थी। कुछ गहना तो बाँट दिया बाकी प्रायः एक हजार की सोना चाँदी गला कर आश्रम की देवमूर्ति के लिए दे दिया। उनके निज के पास दो साड़ी ही रहती जिनमें से भी कभी कभी एक किसी को दे देतीं। यह प्रायः देखा जाता कि देते न देते एक और कहीं से आ जाती।

मैं ढाका से कलकत्ते जाने पर अपने बड़े भाई तुल्य श्रीयुक्त ज्ञानेन्द्रनाथ सेन के यहाँ ठहरता। उनकी स्त्री हिरणमयी देवी मुझे अपने छोटे भाई की तरह मानतीं। उनकी जैसी स्नेहशील, लोकहित इच्छुका, प्रत्येक कार्य में चतुर, सरल, शुद्ध तथा पतिप्राणा स्त्री बहुत कम होती हैं। उनके पवित्रभाव के कारण माँ स्वयम् अक्सर उनके यहाँ जातीं। माँ एक बार कलकत्ते कालीघाट में एक मकान में ठहरीं, मैं उनसे मिलने गया, उसी समय एक भक्त ने माँ को ढाका की साड़ी पहिनाई। माँ उस समय ज्ञानबाबू के घर जाने वाली थीं और रास्ते में भी कहीं और जावेंगी यह सुन कर मैं पहले ही आ गया। घर लौट कर एक मामूली सी साड़ी खरीद माँ के लिए रखी। मैं सोच रहा था कि माँ असल में जहाँ जावेंगी

वहाँ तो इस साड़ी (जो मैं लाया) को देंगी और ढाका वाली साड़ी ज्ञानबाबू की स्त्री को देंगी। इस विषय में किसी और से कुछ न कहा। माँ आईं, किन्तु एक सादी साड़ी पहिने थीं। माँ आते समय जहाँ से होती आई थीं वहाँ ही वह साड़ी दे आईं। मैं अवाक् था! माँ मेरी तरफ देखतीं और हँसती थीं। कोई कुछ नहीं समझ रहा था। आखीर में मैंने स्वयं अपनी दुनिया की अक्ल की दौड़ के विषय में माँ से कहा।

ऊपर जिस प्रकार माँ के कम खाने के विषय में अलौकिक घटनाओं का उल्लेख किया है उसी प्रकार अधिक खाने की भी अनेक घटनाएँ देखी हैं। आठ नौ महीने तक यज्ञाग्नि पर राँधे हुए एक छटाँक अन्न ग्रहण करने के बाद जिस दिन पहली बार साधारण भाव से खाया उस दिन आठ नौ जनो का खाना माँ ने अकेले खाया और एक बार हँसी हँसी में ६०, ७० पूरी तथा उसके अनुरूप ही दाल तथा सब्जी और एक कटोरी मीठा खाया। अन्य एक बार आधमन दूध की खीर खाकर भी बच्चों की तरह और अधिक खाने का हठ तथा अनुरोध करती रहीं।

माँ को इतना खाते देख कहीं किसी की नजर न लग जाय, इस भय से हड़िया पोंछ कर एक दो खीर के छींटे माँ के सिर के कपड़े पर डाल दिये। बाद में देखा जहाँ जहाँ छींटे पड़े वहाँ जलने के से फफोले पड़ गए।

इस प्रकार के खाने के समय वा कभी बाद में उनमें एक अप्राकृत भाव देखा जाता था। माँ कहतीं, "मैंने जो अधिक

खाया, वह तुम लोगों ही के मुँह से सुना, खाने के समय मुझे तो कुछ लगा नहीं। उस समय अच्छी वस्तु ही क्यों यदि घास पत्ता ही दिया होता तो वह भी वैसे ही खा लेती।" इससे उनके शरीर में कुछ विकार नहीं होता। माँ को जब कभी भी किसी काम का ख्याल उठता तो माँ करती ही चली जातीं, अस्वाभाविक होने पर भी फलस्वरूप कुछ अनिष्ट नहीं होता।

जिस प्रकार देवपूजा के उपचार में प्रथम गन्ध पुष्प द्वारा अर्चना करके निवेदन किया जाता है, उसी प्रकार मातृ चरणों में एकनिष्ठ भाव से जितनी मन से पूजा की जावे किसी भी सामग्री द्वारा उतना ही आनन्दलाभ होता है। हमने देखा है कि मुरमुरे खीलें तथा अन्य मामूली से फल यदि माँ को अर्पित किये जाएँ तो वह भी माँ बड़े आनन्द से ग्रहण करती हैं। तरकारी में या तो नमक नहीं है या मीठे में चीनी नहीं है, लेकिन कोई यदि भाव से माँ को खिला रहा है माँ हँसती हुई खाती जाती हैं और फिर "देख तो कैसी है" कह कर सबको बाँट देती हैं। अन्य समय किसी की बहुत मुश्किल से संगृहीत वस्तु को जरा मुँह में देकर ही मुँह बन्द कर लेती हैं।

ढाका गेन्डारिया के रिटायर्ड डिपटी इन्सपेक्टर तारकचंद्र चक्रवर्ती वृद्धावस्था में अपने घर के छानाके संदेश* तैयारी कर चार पाँच मील पैदल चल एक दिन प्रातःकाल आश्रम

* बंगला विशेष मिष्ट।

पहुँचे। माँ उस समय तक अपने विस्तरे में ही थीं। वृद्ध ने आकर ही "माँ', 'माँ' कह शोर मचाया और बोले "मैं बड़े पवित्र भाव से तुम्हारे लिए संदेश लाया हूँ, माँ तुम्हें खाना होगा"। माँ ने बिना हाथ मुँह धोए विस्तरों ही पर बैठे बैठे वृद्ध के हाथ से सदेश खाए और बच्चों की तरह खुश हो ताली बजाने लगीं। तारक बाबू की दोनों आँखों में से आनन्दाश्रु बहने लगे। एक दिन वेबी दोपहर के समय कुछ मिठाई तैयार कर आश्रम आ रही थीं। माँ आश्रम में बैठी उस समय कथा वार्ता कर रही थीं। तब वेबी आश्रम से प्रायः आध मील की दूरी पर होगी। माँ सहसा हँसती हुई बोलीं "मेरे लिए खाने को कुछ आ रहा है। छोटे बच्चों की तरह मिठाई खाने के लिए पहिले ही से प्रस्तुत होकर बैठ गईं। किसी किसी दिन तो किसी को आते ही उससे मिनती कर कहतीं "मेरे लिए क्या लाये हो दो तो।" और फिर उसे ले कितना क्रीड़ा कौतुक करतीं। कभी यह भी देखा गया है कि कोई कुछ लिए माँ की प्रतीक्षा कर रहा है और माँ की निद्रा ही नहीं टूटती है।

मैं उन दिनों बीमार था। एक दिन इच्छा हुई कि माँ के लिये कुछ भेज दूँ। मिठाई रबड़ी-सो दूध की मिठाई तैयार करा के मैंने थोड़ी सी चखी, सिर्फ यह देखने के लिए कि अच्छी तो बनी है। मेरी बड़ी बहिन जो पास ही खड़ी थीं बोली "यह मिठाई माँ के लिए मत भिजवाओ, जूठी चीज से देवता का भोग नहीं लगता है"।

मैंने कहा "नहीं तुम भिजवा दो ।" बाद में सुना उस दिन माँ ने सब खीर अकेले ही खाईं ।

अन्य एक दिन की बात है। मैंने कहा "आज माँ के लिए 'शटिर पालो' (   ) तैयार कर भिजवा दो।" घर में सभी ने बेमन उसे भिजवाया। पीछे पता चला कि माँ ने एक तिनका भी नहीं खाया।

ऐसा भी देखा गया है कि कोई खाली हाथ आ दूर खड़ा हो चुपचाप माँ को भाव उपहार दे रहा है तथा मन ही मन में माँ की कृपा का इतना अनुभव कर रहा है जितना शायद कोई अनेक उपहार भेंट कर अश्रुविमोचन करके भी उस महती कृपा को लाभ न कर सके। जो जिसका भाव रहता है उसी के अनुसार लाभ होता है, माँ की कृपा बाह्य वस्तुओं की अपेक्षा नहीं करती है

माँ के पास आस्तिक-नास्तिक, धनी-दरिद्र; शिशु-युवा, वृद्ध स्त्री या पुरुष सभी के लिए द्वार खुला है। माँ ायः कहा करती हैं "मुझसे मिलने के लिए समय जानना चाहते हो ? मेरा दरवाजा तो हमेशा ही खुला है। तुम्हीं लोग बल्कि संसार की बातों में फँस इस बच्ची की बात भूल जाते हो, जानते हो मुझे तो हर समय तुम लोगों का ख्याल रहता है।" जो अदृश्य में देखें, देख कर भी न देखें कुछ नहीं सुनकर भी सुन लें तथा सुनकर भी अनसुनी करें उनके लिए यह कुछ विचित्र नहीं। दिन रात सुख-दुख, परेशानी खुशी सभी में समभाव से माँ सबके लिए प्रतीक्षा करती रहती हैं।

प्रतिदिन ही सुबह से रात तक अनेक मनुष्य माँ को घेरे रखते हैं। कोई सिंदूर दे रहा है तो कोई बाल काट रहा है, कोई कह रहा है चलो स्नान करा दें, कोई दाँत माँजने ही को कह रहा है, कोई साड़ी पहना रहा है तो कोई जम्पर बदल रहा है, कोई मुँह में मिठाई या फल खिला रहा है, काई माँ से गाने को कह रहा है, कोई चुपचाप माँ के कान में कुछ कह रहा है, नहीं तो आसन से माँ उठी नहीं कि कोई कोई अपनी प्राइवेट कर रहे हैं, फिर कभी कोई यों भी आकर कहता है 'हटो हटो माँ को इस प्रकार विरक्त न करो।" इस प्रकार सभी के अनुरोध, मिलती, शोर गुल में माँ अटलभाव से एक ही आसन पर बैठे बैठे घण्टों विता देती हैं और चारों ओर आनन्द बरसा करता है। माँ की स्नेह दृष्टि उषा की स्वर्णरश्मि की भाँति सभी पर समान भाव से प्रतिहत होती है, चाहे सब समान भाव से आकृष्ट हों या न हों। कोई भी माँ के पास जाकर हताश या दुःखी होकर नहीं लौटा है। माँ कहती हैं "देखो समझो अज्ञता लेकर ही तो भगवान का संसार है जिसे जितना खेलना जरूरी है उसके साथ उतना हीं तो खेला जायगा"। इसी कारण कोई भी कभी यह नहीं कह सकता कि "माँ मेरी नहीं तुम्हारी हैं।" जो जितना माँ सान्निध्य पाता है वह प्रत्येक ही ऐसा समझता है कि "माँ केवल उसकी अपनी हैं" सभी अपने प्राणों का अन्तरतम आवेगा माँ के चरणों में निःसंकोच रूप से निवेदन कर उनकी अभय वाणी लाभ करते हैं।

माँ स्वयम् अपने भक्तों को लेकर क्या क्या खेल रचाती हैं वह

सब हमारी समझ से बाहर है। किसी के पुत्र जन्मोत्सव तथा किसी के पुत्र शोक इन दोनों विपरीत चित्त गति को माँ एकभाव ही से ग्रहण करती देखी गई हैं। कभी शोकातुर को देख कर हँसती हैं तो कभी उल्लसित को देख रो देती हैं। कोई यदि माँ के पैरों के ऊपर पड़ रोता है तो उसे ढाढ़स देती हुई "ऐसा न करो" कह कर पैर खींच लेती हैं। कोई बहुत देर तक पैर पकड़े रहता है, और माँ भी कुछ न कह चुप बैठी रहती हैं। एक दिन एक औरत पुत्रशोक से कातर हो माँ के चरणों में पड़ रोने लगी। माँ ने भी इतनी जोर से रोना आरम्भ किया कि वह औरत सब अपना दुःख व रोना भूल गई। वह माँ का प्रसन्न वदन देखने के लिए आतुर हो गई बोली "माँ! अब मैं नहीं रोऊँगी, तुम चुप हो जाओ!"

बहुतों ने इस बात का अनुभव किया है कि माँ के श्रीचरन दर्शन से, उनके मधुर वाक्य श्रवण से, उनकी पदधूलि ग्रहण करने से प्राणों में एक शुद्ध भाव की व्यंजना होती है। एक दिन एक बंगाली जो विलायत हो आया था मेरे अनुरोध से माँ के दर्शन को गया। उन्होंने बताया कि माँ के दर्शन होने पर बहुत दिनों का भूला हुआ गुरुमंत्र फिर से जग उठा। इस प्रकार के अनेक दृष्टान्त मिले हैं कि बहुत से उनके चरणों की पूजा, ध्यान कर भगवान की पूजा में निरत हो कर्म शक्ति तथा एकनिष्ठता का अनुभव करते हैं। श्रद्धा के साथ उनको आदर्श मान कर उन पर पूर्ण भाव लक्ष्य रख अनेक ही श्रेय की ओर अग्रसर हुए हैं।

सिद्धेश्वरी में कीर्तन में एक बार माँ के साथ ही एक सोलह सत्रह साल की लड़की भावावेश में 'हरिबोल' 'हरिबोल' करते करते जमीन में लोटने लगी। तीन चार दिन तक हरिनाम तथा ऐसी ही विमारावस्था उसकी रही।

यह भी सुना गया है कि कोई कोई माँ के दर्शन व स्पर्शमात्र से पूर्व के किए हुए अशुभ कर्मों से पीड़ित हो आत्मोन्नति के पथ की ओर अग्रसर हुए हैं। ऐसा भी अनेक बार देखा गया है कि जिसे दुनिया पापी कह कर अलग कर देना चाहती है वह भी माँ का संग लाभ कर कृतार्थ हुआ है। माँ कहती है "जो कुछ नहीं कर पाते हैं, जिनके धर्मजीवन में कोई सहायक नहीं है, उन्हीं से मेरा विशेष प्रयोजन है" इस प्रकार के अनेक दृष्टान्त हैं जो धर्मजीवन में अग्रसर मात्र हुए हैं वे माँ की शरण में जा उन्नति लाभ कर गए हैं। और कोई शास्त्रज्ञानी, धर्मनिष्ठ हो कर भी माँ का दो दस दिन संसर्ग पा माँ से दूर हो गये। माँ कहती हैं "समय बिना आए कुछ नहीं हो सकता, जिसे जितना पाना था वह ले लिया।"

कीर्तन के समय देखा गया है कि कुत्ता और बकरी भी माँ के पास बैठ जाते हैं, उनके घुटने पर सिर रखते हैं, कभी माँ के साथ घूमते हैं कभी लूट के समय मनुष्यों की तरह बताशा खाते हैं। साँप तक माँ के साथ देखे गये हैं। एक दिन सिद्धेश्वरी में माँ पेड़ के नीचे बैठी थीं। श्रीमान गिरिजा प्रसन्न सरकार ने देखा कि एक साँप माँ के पीठ पर फन फैलाए है जब कि स्थान चारों ओर

से साफ था। निरंजन के घर भी एक रात को बिजली की रोशनी में एक साँप माँ के पीछे पीछे चल रहा था। बहुत से स्थानों पर माँ के साथ साथ सर्प देखा गया है।

श्री श्री माँ के उपदेश इतने सरल तथा प्राणस्पर्शी होते हैं कि सुन कर ऐसा लगता है मानो अन्तरात्मा वाणी रूप में प्रकाश पा रही है। उसके प्रत्येक वाक्य में सनातन सत्य का आभास मिलता है। वह तर्कयुक्ति तथा मीमांसा नहीं करतीं, इच्छा से ही उपदेश या आदेश नहीं देती हैं। अपने आप जो जिसका लेना होता है वह मन ही में पा लेता है।

ऐसा भी देखा गया है कि कोई अनेक शंकाओं को, ले माँ के पास जाता है और माँ किसी अन्य के साथ बातें कर रही हैं किन्तु उन बातों द्वारा उसकी शंकाओं का भी समाधान हो जाता है। एक बार 'देवघर' वैद्यनाथ जाने पर बालानन्द स्वामी जी ने कहा, "माँ! अपनी गठरी तो खोलो।" माँ ने उत्तर दिया, "गठरी तो बाबा सदा ही खुली है।"

माँ के बहुत से उपदेश 'सद्वाणी' में छप गए हैं और कुछ यहाँ भी उल्लिखित हुए नित्य प्रति जीवन के व्यवहार में जो धर्म और नीति विषयक बातें सुनाई पड़ती हैं यदि उन सबको संग्रह किया जाय तो एक अपूर्व ज्ञान ग्रन्थ हो जावेगा। छोटी सी वस्तु लेकर माँ महत् तत्त्वों का विवेचन कर देती हैं। हमारा छोटा परिवार एक विराट विश्व का अङ्ग है, ससीम जीव जिसके जीवन के घात प्रतिघात में असीम का संधान मिलता है, यही सब कुछ

माँ की बातों, हँसी तथा गान कीर्तन, हाव भाव, चाल चलन में विकसित होता है। उनके वचन तथा शारीरिक व्यवहार सभी उपदेशपूर्ण हैं, संसार और धर्म जीवन दोनों ही क्षेत्रों में उनका प्रयोजन है। उनके गुणों में से यदि केवल एक ही को आदर्श मान कर चला जाय तो जीवन धन्य हो जावे। प्यासे को तो अक्सर ऐसा लगता है कि दुःख दैन्य को नष्ट करने के लिए उन्होंने सर्व मंगल स्वरूप यह देह धारण की है।

माँ के उपदेशों का मूल तत्त्व यह है कि धर्म का प्राण या सार किसी जटिल बन्धन या आचार की चहारदीवारी में निबद्ध नहीं है। जीवन रक्षा का अर्थ ही धर्म रक्षा है, यह मन में धारणा बना दैनिक जीवन के क्रम के साथ साथ धार्मिक साधना की ओर भी मन लगाना मनुष्य के लिए आवश्यक है। माँ कहती हैं, "सद्-बुद्धि से कर्म करो, कर्म करते करते ही एक एक कदम ऊँचे उठने की चेष्टा करो। सब कामों में ही उन्हें लिये रखो, फिर कुछ छोड़ना न होगा। तुम्हारे काम भी होते चलेंगे और महावणिक का संधान भी सहज होगा। माँ जिस प्रकार बच्चे को यत्न से बड़ा करती है उसी प्रकार तुम भी बड़े होते चलोगे। जब जो काम करो मन, वचन और शरीर से सरलता और संतोष पूर्णता करना तभी कर्म में पूर्णता आवेगी। समय होने पर सूखे पत्ते आप से आप गिर जावेंगे तथा नए पत्ते आ जावेंगे।" मैंने सुना है कि जब माँ संसार का कोई भी काज करती थीं तो खाना,

पीना, पहरना ओढ़ना, यहाँ तक कि अपनी शरीर रक्षा की वात भी भूल कर प्रान देकर काम करती थीं। सारे दिन संसार का काम करती तथा सब के हुक्म की तामील करतीं। पास पड़ोस को कहतीं "इस बहु में दूनियावी अक्ल बहुत कम है।"

माँ कहती हैं "प्रत्येक का अपने अपने काम के लिए जैसे स्कूल, आफिस, दुकान इत्यादि का एक न एक निर्दिष्ट समय रहता है, उसी प्रकार २४ घण्टे में से कोई समय जितना जिसकी साध्य हो निर्दिष्ट रखना चाहिये। मन में संकल्प करे कि उसने सदा के लिये अपने परम देवता के लिए उत्सर्ग कर दिया है, उस समय उसकी चिंता के सिवाय कुछ काम नहीं करेगा। परिवार में भी सबके लिए यहाँ तक कि नौकर के लिये भी इसी प्रकार एक समय निर्दिष्ट कर ले। अनेक दिन तक ऐसा करते करते ईश्वर चिंता तुम्हारे लिए स्वाभाविक हो जावेगी। फिर तो कोई सोचने की वात ही नहीं आती। तुम स्वयम् ही अनुभव करोगे कि प्रत्येक विचार और कर्म में एक अज्ञात कृपा धारा तुम्हें बल तथा उत्साह प्रदान करती रहेगी। जिस प्रकार नौकरी के बाद बिना काम करने पर भी पेन्शन मिलती है, यह भी इसी प्रकार है, बल्कि उसकी तुलना में धर्म राज्य में पारितोषिक अधिक ही मिलता है, और सहज में लभ्य भी।"

"नौकरी की पेन्शन मरने पर नहीं मिलता है, किन्तु इस पेन्शन का लय नहीं क्षय नहीं। जो धन इकट्ठा करते हैं। वह घर में एक ऐसी जगह रखते हैं जहाँ कि जमा करके रखते जाते हैं,

उसकी हमेशा रखवाली करते रखते हैं। इसी तरह भगवान् के लिए जिस तरह अच्छा लगे, हृदय में एक स्थान रखो। जब भी समय पाओ तभी वहीं उसका नाम और भाव जागृत करो।"

एक दिन अनेक प्रकार के प्रणाम कर दिखाते हुए माँ ने कहा" जो जितना अपने को भूल एक निष्ठा के साथ प्रणाम कर सके वह उतनी शक्ति पाता है तथा आनन्द लाभ करता है। यदि और कुछ न कर सको तो सुबह शाम देह, मन, प्रान के साथ एक कातर प्रणाम ही करो। उसको तनिक स्मरण करने की चेष्टा करो।" इसी प्रसंग में उन्होंने बताया दो तरह के प्रणाम होते हैं जानते हो ? जल के भरे हुए घड़े के उढ़ेलने की तरह अपने हृदय के समस्त भावों की समर्पन कर देना। दूसरी तरह का प्रणाम होता है पाऊडर के डिब्बे के छिद्रों में से जिस प्रकार पाऊडर छिड़कना तुम लोगों का मन का अधिकांश भाव तो मन ही तक सीमित रहता है, एक दो बिन्दु श्रद्धा बाहर हो पाती है।

प्रमथ बाबू की पोस्टमास्टर जनरल होकर ढाका से बदली हुई। विदा के समय माँ के चरणों में प्रणाम किया। माँ बोली "कौन किसको प्रणाम करे, तुमने तो स्वयं अपने को ही प्रणाम किया।" वह यह बात सुन विस्मय और आनन्द से रोमांचित हो गए।

एक वार अटल बिहारी भट्टाचार्य शरद पूजा के उपलक्ष में शाहबाग जा बीमार पड़ गए। उनकी उत्कट अभिलाशा हुई कि माँ संसारिक माँताओं की तरह उनका माथा दाबें माँ ने जाकर

अटल के सिर से पैर तक हाथ फेरा। वे ठीक होकर राजशाही अपनी नौकरी के स्थान चले गए। कुछ दिन बाद यह शाहबाग में प्रसंग चला। मैं बोला "जैसा खुद वह है वैसी ही उसकी बुद्धि है, माँ से सेवा करवाने का उसका क्या अभिप्राय था, मेरे समझ में नहीं आया।" यह बात सुनते ही माँ का चेहरा बदल गया।" तेरे पैर भी दाब दूँ क्या" कहती हुई मेरी तरफ आने लगीं। मैं वहाँ से उठ भागा, माँ भी मेरे पीछे पीछे चलीं किन्तु पिताजी ने उन्हें पकड़ लिया। बालिका की तरह माँ की वह तेजोमयी मूर्ति आज भी याद है। उस समय श्री० शंशाक मोहन मुखर्जी (पूज्यपाद स्वामी अखण्डानन्द "माँ" "माँ" चीत्कार करते हुए उनके पैरों पर लोट गए। इस उपलक्ष में माँ ने बताया "जिस प्रकार सिर हाथ पैर आदि एक मनुष्य के अङ्ग है, उसी प्रकार मैं समझती हूँ तुम सबको इस शरीर के विशेष विशेष अङ्ग प्रत्यङ्ग हो।"

एक दिन बनारस के स्वर्गीय निर्मलचन्द चटर्जी ने माँ के चरण कमलों में अनेक फूल चढ़ाये। उसी समय एक आदमी कुछ फूल सजाकर मन्दिर में पूजा करने के लिए माँ के पास से ही गुजरा। माँ ने उन चढ़े हुए फूलों को सजा कर रख दिया। माँ को ऐसा करते देख निर्मल बाबू को जिज्ञासा हुई माँ बोली, "जिसका सिर है उसी के तो पैर हैं। सब सब प्रकार के भावों के साथ एक ही की पूजा करते हैं।"

एक दिन बाँस की छोटी संटी से माँ जमीन के ऊपर कुछ

खुरच रही थीं। एक मक्खी के खरोंच लगते ही वह मर गई। माँ ने मरी मक्खी को शीघ्रता से हाथ में ले लिया। अनेक लोगों का जमघट था। अनेक प्रकार के प्रसंगों में चार पाँच घण्टे कट गए थे। तभी माँ ने मुट्ठी में से मरी हुई मक्खी निकाल कर मुझसे कहा "यह मक्खी जो मर गई है इसकी किसी प्रकार सद्गति का उपाय कर सकता है। मैंने कहा "सुना है कि मनुष्य की देह ही में स्वर्ग है।" यह कह कर मैंने माँ के हाथ में से मक्खी निगल ली।

माँ हँसते हँसते बोली "यह किया क्या? मक्खी खाने से उलटी हो जाती है।" मैंने कहा "यदि आपके आदेशानुसार मेरे से इसकी सद्गति हो जावे तो मुझे कुछ नहीं होगा।" वास्तव में मुझे कुछ न हुआ।

माँ ने इस सम्बन्ध में बताया है "कीड़े मकोड़े मक्खियाँ, कीट, पतंग, मनुष्य, सभी तो एक ही परिवार के हैं। कौन जाने किसके साथ किस जन्म जन्मांतर का सम्बन्ध है।"

मेरे मुसलमान (मौलवी जैनौद्दी हुसैन) धर्म भाई थे। वह प्रायः हर समय ही ईश्वर चिंता करा करते थे। एक दिन बृहस्पत-वार के दिन मैं और निरञ्जन शाम के समय उसे शाहबाग ले गए। देखा कि नाचघर में कीर्तन हो रहा था। हम तीनों जने कुछ दूर पर एक पेड़ के नीचे ऐसी जगह खड़े थे जहाँ से कीर्तन में से कोई हमें न देख सकें। प्रायः आध घण्टा बाद देखा कि माँ नाचघर से बाहर आ रही है और साथ में भक्त कुछ रोशनी

लिए हुए हैं। माँ हिलते डुलते जल्दी से चल कर जहाँ हम लोग थे वहाँ आ पहुँची और दाहिने हाथ से मुसलमान भाई का शरीर छूकर टहलने लगीं। हम तीनों भी माँ के पीछे पीछे चलने लगे। शाहबाग में एक कोने में किसी मुसलमान फकीर की कब्र है। माँ ने उस कब्र पर जाकर नमाज के नियमानुसार अंग प्रत्यंग चला उठी और बैठी तथा नमाज के वचन पढ़े। उनका साथ मुसलमान भाई ने भी दिया। नाटमण्डप (नाचघर) लौट कीर्तन फिर से आरम्भ हो गया। मुसलमान भाई भी सबके साथ ताली बजा बजा कर नाचने लगा। वृहस्पतिवार के दिन उस कब्र पर बतासा चढ़ता था किन्तु घटनाक्रमानुसार वह आदमी जिस पर बतासा चढ़ाने का भार था वह उस दिन नहीं आया। माँ के कहने से उस मुसलमान ने वहाँ बताशे चढ़ाए। उस मुसलमान को कब्र पर चढ़े बताशे माँ को खिलाने की इच्छा हुई, माँ के पास बताशे का थाल ले जाते ही माँ ने मुँह खोल दिया तथा कुछ बताशे इस प्रकार माँ को खिला दिए गए। उन्होंने भी हरि-लूट का प्रसाद ग्रहण किया। वह खूब कट्टर मुसलमान थे माँ को देखने से पहले उनके विचार भी अन्य प्रकार के थे। लेकिन मैंने देखा कि उक्त घटना के बाद से माँ के ऊपर उनको अटल श्रद्धा और विश्वास जागृत हुआ।

माँ ने एक और मुसलमान बेगम के अनुरोध से उसी कब्र पर नमाज पढ़ी थी। वे स्वयम् शिक्षिता थीं। उन्होंने बताया कि माँ की नमाज पाठ तथा उनकी धर्म पुस्तक की नमाज एक ही है।

माँ ने बताया "जिस फकीर की समाधि इस कब्र में है उसके सूक्ष्म शरीर को ४, ५ वर्ष पूर्व मैंने मेमनसिंह (बाजित पुर) में देखा था। ढाका शाहबाग आने पर भी उनके तथा उनके शिष्य के साथ मेरी भेंट हुई थी फकीर साहब खूब लम्बे चौड़े अरब देशिय थे।" खोज करने पर सब ऐसा ही निकला।

एक बार माँ विक्रम पुर में रायबहादुर योगेशचन्द्र घोष के यहाँ गईं। वहाँ उस दिन हरिनाम कीर्तन हो रहा था। माँ को भाव हुआ। प्रायः डेढ़ सौ, दो सौ हाथ दूरी पर अन्धेरे में एक मुसलमान लड़का हिन्दुओं जैसा कपड़ा पहिने छिपा बैठा था। माँ भीड़ ठेलती हुई उसके पास पहुँच "अल्ला हो अकबर" इत्यादि कहने लगीं। लड़के ने भी रोते रोते माँ का साथ दिया। वह बोला "जिस प्रकार सहज और स्पष्ट रूप से माँ के मुख से 'अल्ला' का नाम निकला उस प्रकार हम हजार चेष्टा करने पर भी नहीं निकाल पाते। माँ के साथ अल्ला का नाम लेने में जो आनन्द मिला वह समस्त जीवन नहीं पाया।"

एक विशिष्ट मुसलमान परिवार में माँ ने 'हरिनाम' का प्रवर्तन किया। 'हरिनाम' करते करते उन लोगों की आँखों में जल बरसने लगता था। हिन्दू देव देवियों को वे मानते थे तथा माँ की विशेष रूप से श्रद्धा करते थे। इस प्रसङ्ग में माँ ने कहा "हिन्दू-मुसलमान सभी तो एक हैं, एक जन ही को सब चाहते हैं तथा पुकारते हैं, नमाज और कीर्तन सब एक ही तो है।"

श्रीयुत काली प्रसन्न कुशारी तथा उनकी स्त्री श्रीमती मोक्षदा सुन्दरी देवी (पिताजी की बहिन) माँ से बहुत स्नेह करते थे,

माँ को समीप पा उनकी प्रत्येक लीला में श्रद्धा और विश्वास से योग देते थे। एक बार कुशारी महाशय ढाका आए। एक दिन शाहबाग में अनेक आध्यात्मिक चर्चा करने के बाद जब जाने को प्रस्तुत हुए तो हँसते हँसते बोले, "यदि आप में शक्ति है तो मुझको भस्म तो करो ?" ऐसा कह कुछ जलती हुई अगरबत्ती लेकर रवाना हुए। पिताजी तथा माँ भी कहीं जाने वाले थे वे भी उनके साथ हो लिए। खूब धूप हो रही थी, कुशारी महाशय अपने छाते से माँ के ऊपर छाँह करते चल रहे थे। इसी बीच में सहसा कुशारी महाशय एकदम बोले "यह सिर पर कहाँ से आग बरस रही है ? मेरे को भस्म कर रही हो ? भस्म कर रही हो क्या ? सच में आपकी शक्ति का परिचय पा चुका हूँ और जलाओ न।" जल्दी से ऐसा कहते हुए छाते की ओर देखने लगे, इसी बीच में छाता थोड़ा जल गया था।

एक दिन एक आदमी कुछ फूल माँ के पैरों पर चढ़ा गया। उनमें से कुछ फूलों को ले उनकी पंखुड़ियाँ तथा पराग आदि अलग कर माँ ने स्थूल, सूक्ष्म और वर्हिजगत के विषय में बहुत कुछ आलोचना की।

देश विदेश भ्रमण के सम्बन्ध में माँ ने बताया "मुझे तो समग्र संसार एक बाग लगता है। जीव, जन्तु, वृक्ष, लता सभी तो इस बाग में नाना रूप में खेल रहे हैं, सभी की अपनी विशेषता है, यह सब देख मुझे आनन्द होता है। तुम सबने मिलकर बाग का

ऐश्वर्य बढ़ा दिया है। मैं बाग में यदि एक कोने से दूसरे कोने को जाऊँ तो तुम इतने व्याकुल क्यों हो जाते हो ?"

१९३१ ई० में मैदान में घूमते घूमते एक दिन माँ बोली "प्रार्थना साधनाका विशेष-अङ्ग है। प्रार्थना की शक्ति अमोघ है एवम् प्रार्थना ही में जीव और जगत की स्थिति है। जब जो मन में आए 'उन्हें' बताओ तथा सरल और व्याकुल हो उसके प्रति शरणागति प्रार्थना करो।" उसी समय मैं अखबार पढ़ रहा था कि लार्ड इरविन ने वायसराय होकर यहाँ भारत में आने से पहले अपने पिता का मतामत लिया तो उनके पिता ने कहा "तुम फलाफल के विषय में कुछ मत सोचो, यह हम लोगों के हाथ में नहीं है, फिर भी प्रार्थनादि से भविष्य का आभास मिल सकता है। दोनों पिता पुत्र गिरजा में पूजा करने गए। वहाँ से लौट पिता ने कहा "तुमको भारत जाना ही होगा।" लार्ड इरविन ने कहा "मुझे भी ऐसा लग रहा है।" माँ ने यह सुन कर कहा "ठीक तो है। केवल बालक के विश्वास की आवश्यकता है। अभ्यास से ही विश्वास की भित्ति उठती है, शुद्ध विश्वास होने से सरल प्रार्थना आती है। प्रार्थना में सत्य का भाव जागृत होने से कृपा करके वे फलस्वरूप प्रकाश होते हैं।"

अन्य एक दिन माँ ने बताया "कृपा का अर्थ ही है अहेतु की कृपा। जब कृपा होने को ही है तब उनकी इच्छा ही से कृपा होती है। जिस प्रकार बच्चा खेलते खेलते माँ को भूल जाता है तो माँ स्वयम् जा उसे गोद में ले लेती है। बालक ने पुकारा

भी नहीं और माँ का स्नेह प्रकाशन हो गया। तुम लोग कहोगे कि कृपा होना पूर्वजन्मों के सुकृतों का फल है। यह एक तरह से तो सत्य है किन्तु उनकी कृपा का कारण जानना यह प्रश्न उठने पर भी वह स्वाधीन शक्ति होने के कारण आलोचनीय नहीं है। उनकी कृपा तो सबके ऊपर समान भाव ही से है। जब जिसको कृपालाभ का उपयुक्त समय आता है तब आप से आप वह कृपा लाभ करता है। एक आश्रय लो उसके साथ अविच्छिन्न रूप से रहने की चेष्टा करो, तब देखेगा कि जैसे बाँस से लगी बालटी कुए में डाल देने से पानी भर के अनायास ही ऊपर चली आती है उसी प्रकार उसकी कृपा भी निरन्तर पाओगे।" इसी प्रसंग में माँ से पूछा गया कि जिन्होंने भगवान का दर्शन पाया है क्या वे किसी और को भी भगवद्दर्शन करा सकते हैं? माँ ने कहा जिसके देखने का समय होता है वही देख पाता है। फिर भी जिन्होंने उनका दर्शन पाया है वे पथ प्रदर्शक हो सकते हैं।

एक दिन माँ के साथ जन्मान्तर सम्बन्धी वार्ता चल रही थी। माँ बोली "जन्मान्तर सत्य है। आँखों में मोतिया-बिन्द होने पर जब उसे काट दिया जाये तो जिस प्रकार देखने की शक्ति फिर से लौट आती है उसी प्रकार ध्यान योग से विशुद्ध बुद्धि स्वरूप में अवस्थिति करने पर मंत्र और देवतत्त्व का विकाश लाभ होता है, पूर्वजन्म के संस्कार चित्त में उतर आते हैं जिस प्रकार ढाका में बैठे हुए कलकत्ते की कल्पना कर वहाँ

की धारणा कर सकते हो, उससे भी स्पष्ट रूप में पूर्वजन्म का चित्र अन्तस्तल पर प्रतिबिम्बित हो सकता है।" माँ ने कहा "तुम लोगों को देख कभी कभी तुम लोगों की जन्मजन्मान्तर का चित्र आँखों के सन्मुख आ जाता है।" एक बार माँ के कलकत्ते जाने पर एक पुरुष उसकी पत्नी तथा उनका सात आठ बरस का लड़का माँ को देखने आए। माँ लड़के को देखते ही बोलीं "पूर्वजन्म में यह लड़का इस शरीर (माँ का) का भाई था।" माँ का एक भाई बहुत छुटपन में मर गया था। मृत्यु से पहले कुछ चोट लगने से उसका एक हाथ टेढ़ा हो गया था। इस लड़के का हाथ भी टेढ़ा था।

कभी कभी माँ में असीम अलौकिक तेज तथा साहस लक्षित होता है। भयभीत का लेश भी नहीं रहता है। जब जो उनके मन में आए या मुँह में आए वह कार्य रूप में परिणत होगा ही होगा। उनके भाव और कर्म यदि स्वच्छन्द रूप से चलते रहें तो प्राणिमात्र का कल्याण ही हो, कुछ बाधा देने से अनेक समय अमंगल घटता है। बचपन में भी माँ की ऐसी ही प्रकृति थी। चार पाँच बरस की आयु में माँ रोज सुबह अपनी ताई के यहाँ मट्ठा लेने जाया करती थी। एक दिन मट्ठे के लिये जब माँ गईं तो उनकी ताई कुछ विरक्त होकर बोली "रोज मट्ठा पीती है जा आज नहीं मिलेगा।" वह ऐसा कह ही रही थीं कि दधिमथन की हड़िया टूट गई और सब दही फैल गया। वह अवाक् हो माँ

की ओर देखने लगीं। इसके बाद से यदि माँ स्वयम् ही कभी देरी से जातीं तो भी वे उनके लिए मट्ठा रख देती थीं।

माँ फूल जैसी कोमल होने पर भी कभी कभी हमी लोगों के कर्मवश वज्रसे भी कठोर हो जाती हैं। एक बार किसी बेवकूफी की बात पर माँ ने मुझसे कहा "जा, जा, दूर हो जा।" एक बार माँ का आदेश उलंघन करने पर माँ मौन हो गई थी। इस प्रकार की अनेक घटना हैं जब कि मुझ पर उनके शासन की पराकाष्ठा ही हो गई थी। कुछ गलती करने पर दुःखित हो माँ की अमृतवर्षिणी दृष्टि प्राप्त करने का भी सौभाग्य लाभ किया है। इससे चित्त शुद्ध तथा शान्त हो जाता है। किन्तु मन में यदि राग और अभिमान रहे तो बिना पश्चात्ताप करे हृदय में यंत्रणा होती रहती है। एक बार पिता जी मेरा पक्ष ले माँ को समझा रहे थे और माँ कह रही थी "जिस पर कठोर व्यवस्था होने पर भी जो सह सकता है, उसी पर ऐसी व्यवस्था होती है। पेड़ काटने के लिए जैसे पहले कुल्हाड़ी फिर हासिया तथा डाल तोड़ने के लिए हाथ ही काफी है, उसी प्रकार शासन कोमल तथा कठोर दोनों ही तरह का जरूरी है।"

दुःखी और पीड़ित के कल्याण के लिए माँ की असीम कृपा अनेक रूपों में प्रकाशित होती है। माँ कहती हैं "मैं तो अपनी इच्छा से तो कुछ कहती या बोलती नहीं हूँ तुम लोग अपने भावानुसार जो करवाते तथा बुलवाते हो वही करती और बोलती हूँ। अनेक समय किसका क्या होगा यह मैं जान लेती हूँ किन्तु

बोल नहीं पाती हूँ।" कितने ही लड़के लड़कियाँ परीक्षा में सफलता, कितने ही लोग नौकरी व्यवसाय, कन्या विवाह, पुत्र लाभ इत्यादि में प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप में माँ की कृपा लाभ कर चुके हैं उसकी गिनती नहीं है। अनेकों को रोगमुक्त करने के उद्देश्य से अपने अंग प्रत्यंग में चोट लगा तथा उनके लिए स्वयम् दुःख भोगा है, इसकी सीमा नहीं है। ऐसा भी देखा गया है कि जिन लोगों के साथ माँ का कभी साक्षात नहीं हुआ है, उन लोगों के दुःख अशान्ति की खबर माँ के कानों में आई हो अथवा माँ के मन में स्वतः ही ऐसा आभास हुआ हो जो उन्होंने भी सुख और शान्ति लाभ की है। माँ से ही सुना है कि जिस विषय को देख या सुन कर माँ का स्मरण हो उठे, उसकी सदा ही सुव्यवस्था रहेगी। अनेक ही माँ का रोग में, शोक में, तथा स्वप्न में दर्शन पा धन्य हुए हैं।

एक बार एक १२ साल की लड़की जिसे लकवा मार गया था उसे उसके माँ बाप माँ की शरण लाए। माँ उस लड़की से जमीन पर इधर उधर लुढ़कने को कहा। वह मुड़ तक सकती नहीं थी इधर उधर कैसे लेटे? माँ ठाकुर पूजा के लिए सुपारी काट रही थीं उसके एक दो टुकड़े ले उससे बोली "ले हाथ बढ़ा तो!" उसने बड़ी मुश्किल से उन्हें लिया। फिर वे लोग चले गए। घर जाकर लड़की लेट रही शाम को गाड़ी की आवाज सुन सहसा बिछौने से कूद दौड़ कर गाड़ी देखने गई। इसके बाद से धीरे धीरे चलने फिरने लगी।

एक दिन ढ़ाका में मैदान में घूमते घूमते माँ बोली "रास्ते में जो गाड़ी जा रही है उसे ठहरा तो।" गाड़ी ठहराई गई, माँ उसमें चढ़ गईं। गाड़ी वाले ने पूछा "कहाँ जायेंगी?" माँ हँसते हँसते बोली, "तुम्हारे घर।" वह जाति का मुसलमान था। माँ की यह बात सुनकर उसने फिर से न दुहरा कर माँ को अपने घर ले गया। वहाँ जाकर देखा एक वृद्ध मृतकावस्था में पड़ा है, आस-पास उसके सम्बन्धी रो रहे हैं। माँ ने मुझसे कहा, "कुछ मिठाई तो ले आ।" मिठाई मँगवा कर सबको बाँटी फिर माँ लौट आईं। बाद में सुना गया कि वह उसी दिन निरोग हो गया। कभी किसी रोगी को माँ कहती हैं कि आँख बन्द कर शाम के समय जमीन पर जो कुछ मिले उसका व्यवहार करो। ऐसा करने से वह अच्छा हो जाता है। कभी रोगी को अपना आहार—दाल, चावल, तरकारी खिला देती हैं तथा उसका पाय साबूदाना, बार्ली स्वयम् ग्रहण करती हैं। ज्वर तथा पेट के दर्द में भी माँ के आदेश के अनुसार भोजन करके भी अनेक ही निरोग हो गए।

मेरा पन्द्रह सोलह साल का लड़का रामानन्द दस बारह दिन से रक्त अतिसार से ग्रस्त था। माँ एक रात उसे देखने आईं। उसी समय से उसके तो स्वस्थ होने के लक्षण दीखने लगे किन्तु माँ की अगले दिन ही १२ घण्टे खून पेचिस हुई कभी ऐसा भी देखा गया है कि रोगी जब ठीक ही नहीं होने को है तो वह माँ के आदेश की रक्षा अथवा पालन करने की अनेक चेष्टा करने पर भी असफल रहता है। ऐसी बातों में माँ के हावभाव ही से अस-

फल होने का आभास मिल जाता है। शास्त्रों ने भी इस बात को माना है कि उच्चतम शुभ कर्मों के द्वारा कृपा के अनुकूल प्रारब्ध का खण्डन किया जाता है, किन्तु उस कृपा को आकर्षित करने का कर्म करना ही कठिन है, यदि अहेतुकी कृपा ही न हो।

माँ कहती हैं "जब तक दृष्टि है तभी तक सृष्टि है। मैं, तुम, सुख दुख, प्रकाश, अन्धकार यह तो सब द्वन्द्व है। स्वाभाविक कार्य तथा स्वधर्म पर महत्व दो, अभाव और इन्द्रियों के काज त्याग करने पर ही अन्तरात्मा जाग्रत होगी। तब उसमें दृष्टि निबद्ध करने पर ही दृष्टि और सृष्टि के द्वन्द्व का समाधान हो जायगा।

बचपन में माँ के लिखने पढ़ने की सुविधा नहीं थी तथा माँ भी विशेष मन नहीं देती थीं। किन्तु आश्चर्य यह कि माँ पुस्तक के जिस अंश को पढ़तीं उसी में से उनका मास्टर यहाँ तक कि स्कूल इन्सपेक्टर भी प्रश्न करता। इसी लिए वह एक अच्छी छात्री कहलाती थीं। अपने आप किताब पढ़ना या कुछ लिखना ऐसी उनकी आदत न थी। फिर भी उनको अलौकिक ज्ञानवंत ही पाया जाता। जब भी उन्होंने जिस विषय को लिया, उसमें पराकाष्ठा ही कर दी।

एक दिन माँ बातों बातों ही में बोलीं "इटली क्या?" दो एक दिन बाद सुबह एक इटेलियन प्रोफेसर मिस्टर टुसी शाहबाग आए। वे ढाका यूनिवर्सिटी में आए थे। साहब ने इंगलिश में किसी विषय में जिज्ञासा की उसका अनुवाद माँ को करने से पूर्व ही माँ ने संस्कृत में साहब के प्रश्न का समुचित उत्तर दे दिया।

माँ की हस्तलिपि के लिए अनेक प्रार्थना की गई थी। उन्होंने कहा -'मैं स्वेच्छा से तो कुछ करती नहीं हूँ, यदि समय होगा तो मिल जायगी।"

सौभाग्यवसतः १३३७ बंगाब्द आठ असाढ़ को श्री श्रीमाँ का हस्त लिपि मिल गया था वह बंगला मातृ दर्शन में छापा है।

श्री श्री माँ के बहुत सी जगह फोटो लिए गए हैं। शायद अब तक ४०० प्रकार के फोटो खिंच चुके होंगे * किन्तु आश्चर्य यह है कि एक तस्वीर का मुख दूसरी से सम्पूर्ण रूप से नहीं मिलता है। ढाका के श्रीमान सुबोधचन्द्रदास गुप्त और चटगाँव के श्रीयुक्त शशिभूषणदास गुप्त तथा अन्य अनेकों ने श्री श्री माँ के बहुत फोटो खींचे हैं। १९३८ ई० में अकटूबर के महीने में शारदीय उत्सव में शशि बाबू ढाका आए थे एवं हम कई एक जन मिलकर एक दिन सुबह माँ का फोटो खींचने शाहबाग गए थे।

वहाँ जाकर सुना कि 'माँ कहाँ हैं' यह कोई बता नहीं सकता है।

खोज करने पर पता लगा कि एक अँधेरे कमरे में माँ बेहोश पड़ी हैं। शशि बाबू उसी दिन शाम को ढाका से अपने देश को लौट जाने वाले थे। इसलिए वे तभी माँ का फोटो खींचने के लिए आतुर थे। पिताजीसे विशेष रूप से कह हम दो जने माँ

* यह १९३८ ई० की बात है, इन ग्यारह सालो में अनेकों फोटो और उतर चुके होंगे।

को पकड़ कर लाए और फोटो के लिए उन्हें बिठा कर हम कैमरे के सामने से कुछ दूर को हट गए। माँ का उस समय गद्‌गद् भाव था। तस्वीर हिल गई। इस आशंका से शशि बाबू ने १८ प्लेट व्यवहार किए। बाद को चटगाँव से सूचना मिली कि १८ प्लेटों में से केवल आखिरी तस्वीर अच्छी आई है एवं माँ के ललाट पर चन्द्राकार प्रकाश पुंज की प्रतिमूर्ति दिखाई देती है। और विशेषता यह कि माँ के पीछे मेरी तस्वीर भी आई। इस सम्बन्ध में उनके एक पत्र का कुछ अंश नीचे उधृत किया है।

फोटो के प्रिंट आने पर किसी-किसी ने यह चित्रकार के कौशल है इसी प्रकार अपना विचार प्रकट किया। इस सम्बन्ध में माँ ने बाद में बताया "जब अँधेरे कमरे में यह शरीर था, तब चारों ओर एक ज्योति से कमरा भर उठा था। फोटो खींचने के लिए जब इस शरीर को बाहर लाया गया तो तब भी वह प्रकाश था। क्रमशः वह संकुचित हो कपाल पर केन्द्रित हो गया था। मुझे ऐसा ख्याल हुआ कि ज्योतिष भी मेरे पीछे है। अब यह ऐसा क्यों हुआ यह तुम्हीं समझो।" वह तस्वीर इस अध्याय में दी गई है। शशि बाबू ने इस प्रसंग में मुझे लिखा था।

"उक्त फोटो खींचते समय १८ प्लेट व्यवहार किए। पहले कुछ प्लेटों में तो कुछ भी नहीं आया। बाद वालों में कुछ छाया मात्र सी आई। केवल अन्तिम ही में माँ की तस्वीर पूर्ण रूप से आई। आप कैमरा के पल्ले से बहुत दूर थे एवं माँ की ओर देखते हुए मुझे फोटो खींचने के लिए
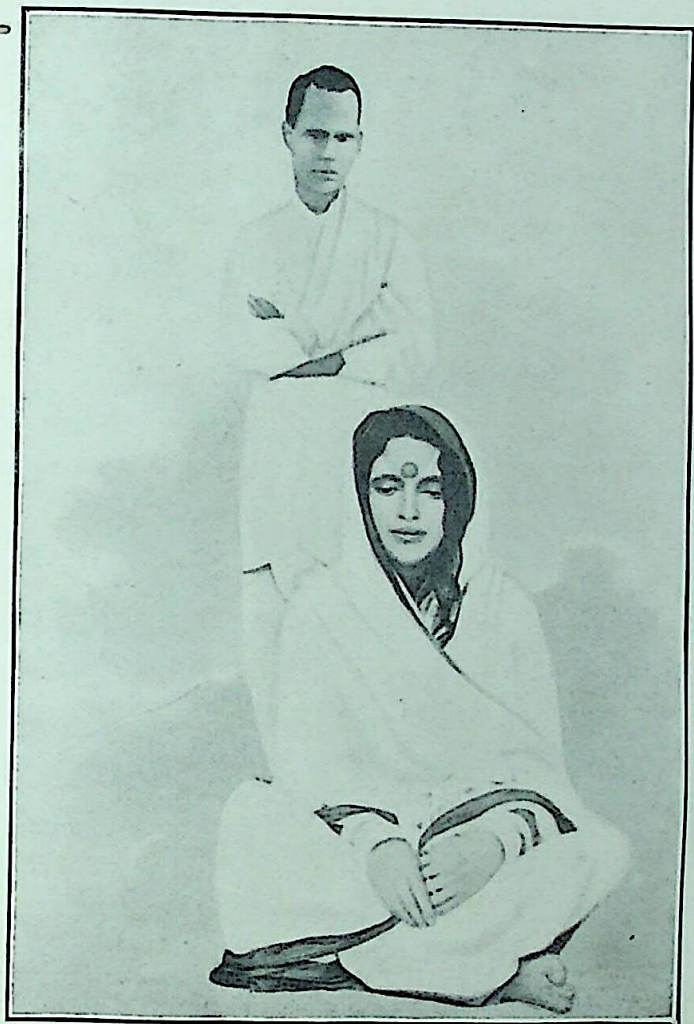
मताजी का पशचात् मे भाइजी के छाया मुर्त्ति।

इशारा कर रहे थे। पहले ही से प्रत्येक फोटो लेते समय ही मुझे डर लग रहा था और खराब होने की आशंका से दुःख हो रहा था। अन्तिम प्लेट को ExPose देख मेरा मन अपूर्व आनन्द से भर गया। तब से मैंने माँ के चरणों ही में आश्रय लिया। आज कल के दिनों में यदि इस प्रकार की एक घटना होती तो मेरी अवस्था क्या होती कह नहीं सकता।"

आश्रम

ढाका में श्री श्री माँ के एक आश्रम का अभाव सभी अनुभव कर रहे थे। एक दिन चाँदनी रात थी। मैं शाहबाग गया। माँ ने कहा "चल मैदान में चलें।" पिता जी, माँ और मैं रमना के मैदान में जहाँ टूटा मन्दिर था उससे कुछ दूर जा बैठे। मैंने माँ के चरणों में निवेदन किया "शाहबाग में तो सर्वदा कीर्तन चलेगा नहीं, एक आश्रम की आवश्यकता है, माँ बोली सम्पूर्ण जगत ही तो आश्रम है नया आश्रम बनाकर क्या करेगा?" मैंने कहा "हम लोग कुछ अधिक तो चाहते नहीं है केवल एक ऐसा स्थान चाहते हैं जहाँ आपके चरणों के चारों ओर बैठ कर हम लोग कीर्तन कर सकें।" पिता जी ने भी मेरी बात में हाँ में हाँ मिलाई। माँ तब बोल उठीं "यदि ऐसा ही कुछ करे तो यह टूटा घर है न, यही जगह बड़ी है, वह तुम लोगों का पुराना घर है।" ऐसा कह हँसते हँसते चुप हो गईं। इस जगह पर उस समय एक टूटा शिव मन्दिर था, उसके चारों ओर ईंट, पत्थर तथा जङ्गल था। वहाँ अनेक प्रकार के साँप दिखाई दिया करते थे। आश्रम प्रतिष्ठा के बाद भी वहाँ बड़े बड़े साँप देखे गए। माँ तब किसी किसी सोमवार को इस टूटे शिव मन्दिर में दूध केला चढ़वाया करती थीं। एक सोमवार को एक नई हड़िया में पाँच सात केले तथा कुछ कच्चा दूध रखा गया। सात दिन बाद प्रायः रात के

नौ दस बजे माँ ने जाकर देखा कि दूध केला जैसा रखा गया था वैसा ही रखा हुआ है एक चींटी तक वहाँ नहीं है। माँ ने स्वयम् वह दूध पीने को कहा, बहुतों ने विरोध किया कि इतने दिन से रखा हुआ विषाक्त हो गया होगा। किन्तु माँ जो कहती हैं करके रहती हैं, उन्होंने एक घूँट पिया तथा सबने प्रसाद लिया, बाकी कुछ वहाँ छोड़ दिया गया। दूसरे दिन सुबह जाकर देखा तो हाड़ी खाली मिली, मानों सब किसी ने चाट लिया हो।

खोज करने पर पता लगा पूर्वोक्त स्थान रमना काली की सम्पत्ति है। वहाँ के ठाकुर श्रीयुत नित्यानन्द गिरि को कहने पर उन्होंने कहा ६०००) से कम में वह यह जमीन नहीं देंगे। कुछ महीने बाद स्वर्गीय निरंजन के ढाका आने पर मैंने रु० इकट्ठा करने की चेष्टा की। किन्तु कुछ हिसाब न बैठा। १९२७ ई० के पूर्वार्द्ध में मैं खूब बीमार हो गया। एक दिन निरंजन ने कहा "मेमनसिंह गौरीपुर के जमीदार श्रीयुक्त व्रजेन्द्रकिशोर राय चौधरी ने १०००) दिए है, तुम जल्दी ठीक हो तो कुछ करा जाए।" निरंजन ने धीरे धीरे और भी कुछ अर्थ संग्रह किया किन्तु वह ठाकुर ६०००) से कम में किसी तरह भी जमीन देने को राजी न हुआ। प्रायः डेढ़ साल बीमार रह फिर ढाका जाकर बहुत सी और जगह भी देखीं किन्तु माँ की बताई हुई जगह को छोड़ और कोई जँची नहीं। उलझन सी में पड़ बैठ गया। १९२९ ई० के पूर्वार्द्ध में माँ कलकत्ते थीं। श्रीमान् विनय भूषण बनर्जी ने ढाका से कलकत्ते जाकर माँ के साथ

आश्रम सम्बन्धी बातें की। उसने मुझे आकर बताया। मनमें एक नवीन उत्साह जागृत हुआ। मैंने एक दिन निश्चय किया आज ठाकुर से मिल कर अन्तिम निर्णय करूँगा। यह सोच जब घर से निकला तो देखा कि माँ की छायामूर्ति संग संग चल रही है, तभी मुझे निश्चय हो गया कि आज कार्य सफल होगा। ठाकुर ने कहा "जब आप इतना रु० नहीं दे पा रहे हैं तो कोई अस्थायी बन्दोबस्त करिए, अन्य स्थायी व्यवस्था बाद में भी हो सकती है। काली मन्दिर आप ही लोगों का है जो उचित समझें वह करिए।" अनेक बहस के बाद ५००) नजर के रूप में तथा ३००) सालाना देने की शर्त हुई। इस प्रकार का बन्दोबस्त बहुतों को पसन्द नहीं आया, आ भी नहीं सकता है किन्तु आश्रम के लिए यही एक उपयुक्त स्थान था। माँ का आश्रम, उन्हीं के लिए करना है तथा हम लोगों का सोचना व्यर्थ है यह सोच कर जमीन ले ली गई। श्रीयुत मथुरानाथ वसु, श्रीयुत निशिकान्त मित्र तथा बृन्दावन चन्द्र वसाक इस विषय में विशेष उद्योगी थे। १३३५ बंगाब्द ३१ चैत्र (१९२९–१३ अप्रैल) उस पुरानी घर में माँ के चरण स्पर्श कराए गए। निरंजन तब अपनी स्त्री के वियोग से व्यथित था। उस दिन वह भी वहाँ उपस्थित था। दो महीने बाद उसकी मृत्यु हुई थी। उसके ही माँगे हुए धन से आश्रम की भित्ति उठी, वे स्वामी स्त्री यद्यपि आज जीवित नहीं हैं किन्तु माँ की चरण रज के साथ उनका सम्बन्ध है। आश्रम के सम्बन्ध में माँ ने कहा "आश्रम का अर्थ ही है शुद्ध

स्थान, जहाँ आने से मनमें धर्मभावना उठे। सभी यह चेष्टा करें कि इसका वातावरण दिन रात साधन, भजन, सत्चिन्ता तथा सदालोचना आदि से विशुद्ध रहे, स्थान चाहे कम ही हो।" इसीलिए सबसे पहले माँ के लिए छोटा ही सा घर बना।

श्री श्री माँ का चलना फिरना या भाव का खेला अचिन्तनीय रूप से अद्भुत है। कब क्या करती हैं तथा क्यों करती हैं इसे समझने की चेष्टा ही व्यर्थ है। १९ वैशाख १३३६ बंगाब्द (१९२९ ई० २ मई) को श्री श्री माँ ने नए रमना आश्रम में प्रवेश किया। चारों ओर आनन्द ही था। श्रीयुत बाउलचन्द्र बसाक ने आकर माँ को फूलों से कृष्ण रूप में सजाया। माँ भी सबके साथ हँसती खेलती रहीं। मैंने देखा कि इतने आनन्द में भी मानो सब निरानन्द है। मैं अकेला खड़ा माँ के हाव भाव लक्ष्य कर रहा था। मुझे ऐसा लगा मानो उनकी दृष्टि तथा मन उदास हो इधर उधर भटक रहा है। रात के दो बजे मैं घर लौट आया। दूसरे दिन शाम को पिता जी हमारे मोहल्ले में आए थे किसी ने आकर सूचना दी कि वे शीघ्र ही आश्रम लौटें। पिता जी के साथ मैं भी वहाँ गया। रात के उस समय दस या साढ़े दस बजे होंगे। देखा सब उत्कण्ठित तथा दुःखी हैं। श्री श्री माँ आश्रम की सीमा से बाहर मैदान में बैठी हैं। मैंने सुना कि माँ सुबह ही से बाहर ही बाहर घूम रही हैं। पिता जी को देख माँ बोली, "इस शरीर के पिता के साथ कुछ दिन घूम आऊँ तुम आश्रम में रहो।" पिता जी ने अनेक प्रतिवाद के बाद "अच्छा"

कहा। अनेक ही माँ के साथ रेल के स्टेशन तक गए। मैं और पिता जी आश्रम ही रहे। बाद में हम लोग भी स्टेशन गए। पिता जी ने माँ का संकल्प स्थगित कराने की चेष्टा की किन्तु माँ एक दम स्थिर थीं।

मैमनसिंह की गाड़ी छूटने ही वाली थी। माँ गाड़ी में चढ़ गई, पिता जी ने मुझे माँ के साथ जाने का आ:श दिया और कहा कि यदि माँ मना भी करें तो तुम किसी और डिब्बे में बैठ जाना। उनकी बात मान कर मैं भी माँ के साथ रवाना हुआ। रात को हठात् एक वस्त्र से मेमनसिंह यात्रा के लिए चला तो मनमें जो संघर्ष मच रहा था वह कहा नहीं जा सकता। सूर्य कर्मनिष्ठ है— यह सत्य है, प्रभात के प्रकाश के साथ ही आफिस और परिवार के अनेक कर्तव्य याद आने लगे। मनुष्य की कैसी दुर्गति! संसार शृंखला का बन्धन अटूट है। जिसकी पदधूलि के स्पर्श के लिए अनेक वर्षों से प्राण आकुल था, जिन्होंने यम के हाथ से मेरा उद्धार किया उन्हीं के आश्रय में बैठ भी मन निरानन्द था। मुझे स्वयम् ऐसा लगा मानो भक्ति श्रद्धा तो केवल क्षणिक उच्छ्वास है यथार्थ में तो हम भोग वासना ही के सेवक हैं। माँ भी ऐसा कहती हैं "तुम लोगों की भक्ति और प्रीति तो शरीर पर जैसे हवा चलती है वैसी ही है, अन्तर में जो अमृत का भण्डार है, उसे ही यदि नहीं खोल पाओगे तो असली वस्तु कहाँ से दे सकोगे" मैमनसिह स्टेशन पहुँच माँ से पूछा "कहाँ जावेंगी ?" माँ ने कहा "पहाड़ की ओर।" मैंने कहा "जोर से मेंह बरसने वाला है,

वृद्ध पिता को लेकर पहाड़ पर जाना क्या ठीक होगा ? यदि आप अकेले में रहना चाहती हैं तो काकस बाजार समुद्र के किनारे चलें।" माँ चुप रहीं। साधारणतया देखा गया है कि माँ किसी भी विषय में अधिक नहीं बोलती हैं। जब जो आदेश या संकेत हो तब बिना प्रतिवाद किए उसका पालन करना ही हम लोगों के लिए उचित है। नहीं तो अनेक समय अनिष्ट घटता है। अनेक सोच विचारने के बाद शाम की गाड़ी से काकस बाजार चला। आशुगंज स्टेशन पर गाड़ी पहुँचते ही मेंह बरसने तथा हवा चलने लगी। माँ ने कहा "यह क्या देख रहा है? कल और भी देखेगा।" दूसरे दिन चटगाँव पहुँच काकस बाजार के लिए स्टीमर पर चढ़े। स्टीमर जब चला तो खूब तुफान होने लगी जहाज हिलने लगा, जहाज के ऊपर से लहरे जाने लगीं। यात्री डर से चिल्ला रहे थे, रो रहे थे किन्तु माँ का आनन्द कौन देखे ?

समुद्र की क्रीड़ा देख माँ बोली "देख कैसा अखण्ड कीर्तन चल रहा है, भक्ति और साधना द्वारा यदि मनुष्य उन्नति करना चाहे तो इस प्रकार के अखण्ड भाव से श्रवण, स्मरण और कीर्तन की आवश्यकता है।"

काकस बाजार से आदिनाथ गए। मैं ढाका लौट आया। माँ वहीं रहीं। कुछ दिन बाद पिताजी आकर माँ को आदिनाथ से कलकत्ते ले गए। वहाँ से माँ अपने पिताजी के साथ हरिद्वार गईं।

बाद में सहस्रधारा (देहरादून) अयोध्या, बनारस विन्ध्याचल

नवद्वीप इत्यादि अनेक जगह घूम फिर कर कलकत्ते जा पिताजी को भी साथ लेकर चाँदपुर आईं। माँ के साथ कलकत्ते में मेरी भेंट हुई। मैंने सुना कि माँ बहुत दिन से अपने भाव में जमीन पर चुप चाप लेटी रहतीं हैं तथा कुछ फल और शरबत पीती हैं। मैंने देखा कि माँ यंत्रवत् किसी तरह चलना फिरना कर रही हैं। माँ की तब की अवस्था देख कर मेरे मन में ऐसा आया था कि जब भगवान् मनुष्य देह धारण करें तो उन्हें भी माया जगत के अधीन हो कर चलना होता है।

कुछ दिन बाद माँ और पिता जी चाँदपुर से ढाका आकर सिद्धेश्वरी आसन में रहे। पिता जी बहुत बीमार पड़ गए। वह अनेक कष्ट झेलकर उठे कि माँ एक दम मरनासन्न सी हो विस्तरे पर पड़ गईं। माँ की इस पीड़ा के सम्बन्ध में पहले लिखा जा चुका है।

१९२९ ई० अकटूबर के महीने में रमना आश्रम में टीन की एक छाप्पर रख कर काली मूर्ति वहीं लाई गई। १९३० ई० नवम्बर के महीने में एक रात एक चोर मूर्ति के हाथ तोड़ कर सोने के गहने चुरा ले गया। अब यह समस्या उठी कि खण्डित मूर्ति की पूजा नहीं हो सकती पण्डितवर श्रीयुक्त पंचानन तर्करत्न महाशय ने कहा कि यह ठीक है कि शास्त्रानुसार खण्डित मूर्ति की पूजा नहीं हो सकती किन्तु इस जगह पर किसी एक विशिष्ट महापुरुष के आदेश से नैमित्तिक पूजा हो जाने पर भी विसर्जन न कर नित्य पूजा की जब व्यवस्था हुई है, तो उसी के अनुसार

चलना ठीक है। माँ के आदेशानुसार उस मूर्ति का ही संस्कार कर पूजा होने लगी। ❀

इसके पहले मैंने प्रायः माँ से काली मूर्ति के लिए मन्दिर बनवाने का निवेदन किया था। तब माँ ने एक दिन हठात् ही कहा था "एक वर्ष ठहर।" ठीक इसी समय के बीच ही में १९३१ ई० जनवरी के आरम्भ ही में श्रीयुक्त नगेन्द्रनाथ राय और श्रीमान भूपतिनाथ मित्र के विशेष उत्साह और परिश्रम से मन्दिर की नींव पड़ गई मन्दिर की नींव खोदने पर चार पाँच बैठी और लेटी छोटी बड़ी समाधि निकली। इन समाधियों के संबंध में माँ ने एक दिन बताया था "यहाँ कि सब जगह बहुत पवित्र है, पहले यह संन्यासियों की जगह थी। तू भी उनमें से एक था। मैंने उनमें से कई एक महापुरुषों को यहाँ रमना के मैदान में घूमते देखा है। साधुओं की आन्तरिक इच्छा थी कि उन लोगों की समाधि पर मन्दिर की स्थापना हो एवं इस तरह देवपूजा साधन मन्त्रादि द्वारा यह स्थान जन साधारण के धर्मभाव को जागृत करा पवित्रता की रक्षा करे। इसी लिए आज यहाँ यह सत कर्म हो रहा है। जो इस अनुष्ठान के सम्पर्क में आवेंगे उन सब का ही उन महापुरुषों के साथ में कुछ न कुछ बंधन था।" मैंने माँ से जिज्ञासा की "यदि किसी जन्म में संन्यासी था, तो आज यह अवस्था क्यों है?" माँ ने उत्तर दिया "जिसके द्वारा जो

❀ वह मूर्ति आज कल आश्रम में मन्दिर गह्वर में है।

काम करवाना आवश्यक है, कर्म क्षय न होनेतक वह उसी प्रकार के कामों में लिप्त रहता है।"

आश्रम बनने से पहले जब माँ शाहबाग में थीं तब रोज शाम को कीर्तन हुआ करता था, तथा पूर्णिमा और अमावस को अनेक रात तक चलता था। एक दिन पूर्णिमा को रात के समय मैं अपने कमरे में लेटा था, ११ बजे का समय होगा मैं तब तक जागता था। मेरे कान में "हरे मुरारे मधुकैटभारे" की मधुर ध्वनि बहुत देर तक आती रही। शायद माँ आज कीर्तन में इसे गा रही होंगी मेरे मन में ऐसा उठा। दूसरे दिन जाकर मैंने मालूम किया कि सच-मुच माँ ने रात्रि में "हरे मुरारे मधुकैटभारे गोपाल गोविन्द मुकुन्द सौरे" का केवल प्रथम अंश गाया था। किन्तु दुर्भाग्य! ऐसा कृपामय आकर्षण होते हुए भी कीर्तन के लिए प्रेम न आता। एक दिन शाम को मैं और निरंजन शाहबाग गए। कीर्तन हुआ। माँ ने आदेश दिया "आज जिन्होंने कीर्तन में योग दान नहीं किया है, वे सब नाम करें।" मैंने और निरंजन ने अन्य जनों के साथ लज्जा और संकोच से अस्पष्ट स्वर में नाम किया, किन्तु माँ के आदेश का अक्षरशः पालन नहीं कर सका इसके लिये मन में दुःख हुआ। हठात् माँ बोल उठीं "आज तो शनिवार है कल इतवार है, आज रात को तुम सब मिल कीर्तन ही क्यों न करो?" निरंजन घर लौट गया, मैंने सारी रात कीर्तन ही में काटी। रात्रि के अन्तिम पहर में माँ ने प्रभाती सुर में "हरि हरि हरि हरि हरि हरि हरि बोल" गाया। मेरे प्रानों में एक अपूर्व उद्दीपना हुई।

इस दिन से मुझे विश्वास हो गया कि साधन भजन में कीर्तन का स्थान किसी भी साधन से कम नहीं है। आज भी आश्रम में प्रत्येक शनिवार को कीर्तन होता है, उक्त रात से ही (१९२६ ई० नवम्बर) प्रथम आरम्भ था। उसी दिन रात को हरि नाम के साथ माँ नाम भी प्रयुक्त हुआ। उसके कुछ दिन बाद सप्ताह के शनि दिन एक न एक के घर, कीर्तन होने की व्यवस्था हुई।

शाहबाग में कीर्तन के समय 'हरिबोल' कीर्तन ही बहुत करके होता था। बहुत बार मैं यह सोचता कि जब माँ ही सब को सब भावों की लक्ष्य रूप हैं तो 'माँ' कीर्तन ही संगत है। किसी किसी से मैंने कहा भी किन्तु किसी ने भी ध्यान नहीं दिया। मैं स्वयम् कीर्तन कर नहीं सकता था इसलिए चुप रहा। श्रीमान अनाथवन्धु, ब्रह्मचारी कमलाकान्त जो आश्रय में योग देते थे उनसे भी मैंने कहा "कीर्तन में माँ नाम लाने की चेष्टा भी करते चलो।" श्रीयुक्त कुलदाकान्त बनर्जी तब शाहबाग में नए-नए ही आए थे, धर्म कर्म पूजा आदि में उनकी बहुत निष्ठा थी किन्तु वे भी 'माँ' नाम संगत होगा कि नहीं इस विषय में कुछ निश्चय न कर सके। खैर हरि और माँ नाम मिला कर कीर्तन चलने लगा। मनुष्यों के संस्कार उत्पन्न अभ्यास सहज ही में नहीं छूट सकते हैं। विशेषतः धर्मानुशीलन में जो दस जन करते हैं, वही करना हम लोगों का स्वभाव है। जो बहुत दिनों से चल रहा है उसमें उलट फेर करने पर भी आशंका होती है।

तब मेरे ध्यान में माँ की ही तस्वीर रहती थी। शरीर और

मन माँ की चरणरज स्पर्श करने के लिए आतुर रहता आँखों के सामने माँ की मूर्ति ही रहती। माँ की बातें सुनने के लिए प्राण आकुल रहते। अन्तर की श्रद्धा भक्ति की धारा उन्हीं के चरणों की ओर प्रवाहित रहती और कीर्तन के समय यदि "प्राण गौरांग नित्यानंद" अथवा "एसहे गौर, वसहे गौर आमार हृदय प्रांगने" इस प्रकार का कीर्तन होता तो कीर्तन और मेरी चित्तगति का तनिक भी समन्वय नहीं हो पाता था।

पूजा व ध्यान धारणा की तरह कीर्तन का भी एकमात्र उद्देश्य अपनी चित्तवृत्ति को एक मुखी कर सब वासना और कामनाओं को एकाग्र कर आराध्य देवता की ओर अभिमुख कर देना। तब प्रायः ही मेरे मन में आता कि विविध पदावली के विचित्र भाव और राग में मन को एकाग्र न कर इष्ट मूर्ति की ओर चित्त स्वतः ही आकर्षित हो ऐसा यदि गाने का भाव तथा सुर गति हो तो भजन कीर्तन में प्राण आ जायगा तथा हमारे चित्त को भी परम आश्रय लाभ होगा।

यदि हम लोग एकनिष्ठ माँ के दास हो सकें तो एक माँ नाम के कीर्तन ही में साधू भक्तों के पदों का माधुर्य तथा ऐश्वर्य फूट सकता है। माँ शब्द तो समस्त मानव जाति का आदि और नित्य शब्द है। पैदा होते ही यही पहला शब्द मनुष्य के मुख से निकलता है तथा जब तक वह जीवित रहता है तब तक प्रत्येक श्वास से ओम् और निश्वास से माँ ही उच्चारित करते रहते हैं। विशेषतः

यह माँ नाम सब जातियों में सब सम्प्रदायों में स्वभाविक ध्वनि तथा परम सम्पद है।

यदि हम लोग वास्तव में माँ को जगत जननी के रूप में माने तो माँ नाम के कीर्तन ही से सहज साधना करनी उचित है।

इस समय कीर्तन में माँ का नाम प्रयुक्त कर मैंने एक गान रचना की। उसे यहाँ उद्धृत किया जाता है :—

हरिषे विषादे किवा सुखे दुखे
हि० (हर्ष में विषाद में अथवा सुख दुःख में)
डाक मा मा मा मा मा
(पुकारो माँ माँ माँ माँ माँ)
माँ माँ माँ माँ माँ माँ माँ माँ माँ माँ माँ माँ
मातृ गर्भ हइते जखन पड़िया
(गर्भ से जब बाहर आया)
निल तुलि कोले जननी आसिया
(माँ ने तभी गोदी में उठा लिया)
करिल दीक्षित मंत्रे ओं या
(ओं या मंत्र से किया दीक्षित)
डाकिते शिखिले मा मा मा
(माँ माँ माँ सीखा पुकारना)
आपनाते भर करिया आपनि
(निज में अपना पन भर के)
गियाछ भूलिया सेई आदि ध्वनि

(भूल गया वह आदि ध्वनि)
ताई वेदतंत्रे वेड़ा ओ खूजिया
(इसी लिए वेदतंत्र में ढूढ़ते फिरो)
असीम अनन्त सीमा
(असीम अनन्त सीमा)
यदि हृदितत्त्व बूझिते चाओ
(यदि हृदतत्त्व समझते चाहो)
नाम रूप सुर माँ बीजे डुबाओ
(नाम रूप सुर में माँ बीज में डुबाओ)
भास आँखि जले मा मा मा वले
(अश्रुपूर्ण नेत्रों से माँ माँ माँ बोलो)
कर पथेर सम्बल श्री आनन्द मयी माँ
(करो जीवन पथ का सम्बल श्री आनन्द मयी माँ)

१९२८ ई० के पूर्वार्द्ध में मैं गिरिडि में था। सहसा एक दिन माँ व पिता जी वहाँ आ पहुँचे। मैंने उन दोनों से निवेदन किया कि और आश्रमों की तरह हमारे आश्रम में भी कीर्तन के एक विशेष नाम का प्रयोजन है। आश्रम की भावधारा, विचार धारा, और कर्मधारा का जो केन्द्र है, यदि साधन और कीर्तन का सुर ही उसी नाम के साथ केन्द्रित हो जाए तो साधन प्रचेष्टा में अधिक बल होगा। हरि और माँ नाम संयुक्त कर अनेक पद रचे गए। जिनमें से एक ढाका में कुलदा के पास भेजना स्थिर किया। माँ के जाने के बाद वह ढाका भेजा जायगा, इसी

स[illegible] मेरे मन में एक प्रबल भाव का उदय हुआ और केवल माँ नाम का ही एक नया पद बन गया ।

माँ माँ माँ माँ माँ माँ माँ

बोलो माँ माँ माँ माँ

कहो माँ माँ माँ माँ

गाओ माँ माँ माँ माँ

भजो माँ माँ माँ माँ

जपो माँ माँ माँ माँ

बोलो, गाओ, भजो जपो माँ माँ माँ ❀

यह ढाका कुलदा दादा के पास भेजा गया, उन्होंने लिखा पद ने सब को ही आकर्षित किया है एवं उसी प्रकार कीर्तन की व्यवस्था की गई है ।

यही 'माँ' कीर्तन का प्रथम सूत्रपात हुआ । अभाव नहीं हुए बिना मनुष्य प्रकृत भाव में नहीं आ सकता है । जब उपरोक्त कीर्तन का पद प्रवर्तित हुआ तब कई एक मास से माँ ढाका से

❀ जिस प्रकार एक सुर से ही सारे गम इत्यादि सप्त विभाग हैं, उसी प्रकार एक माँ को लक्ष्य करके माँ, माँ, माँ, माँ, माँ, माँ, माँ, इन सात शब्दों में कीर्तन का पद बना । अभ्यास हो जाने से एक ही लक्ष्य तथा एक ही ध्वनि के आश्रय में चित्त को एकाग्र करना होता है । तब भावोन्माद सहज होता है, उस एक ध्वनि के स्पन्दन ही में सारी देह और मन के स्पंदन में एकत्व होता है ।

बाहर बाहर ही रही थी, इसी लिए वियोगी विरही भक्तों के हृदय में मधुर माँ पुकार की मधुरता अन्तर में भर गई थी।

जब रमना आश्रम तैयार हुआ तो माँ के मुख से निकले हुए सूक्तों (जिनका उल्लेख पहले हो चुका है) के पदों का कीर्तन से पहले गान होता था। १३३६ बंगाब्द (१९३१ ई०) अग्रहायन के महीने के अन्तिमार्द्ध में एक दिन माँ ने मुझे बुला कर कहा "यह स्तोत्र असम्पूर्ण है और किसी भजन की व्यवस्था नहीं कर सकता है ?" आदेश पालन किया, सोचने लगा कि संस्कृत में तो अनेक स्तव और स्तुति हैं किन्तु यदि बंगालियों के लिए बंगाली भाषा ही में हो तो अच्छा रहेगा। कई एक दिन बाद श्री श्री माँ के कल्याणमय संकेत से रात के तीन बजे प्रेरणा मिली और निम्नलिखित गान आप से आप रच गया।

(१)

जय हृदयवासिनी शुद्धासनातनी श्री आनन्दमयी माँ
भुवन उजला जननी निर्मला पुण्यविस्तारिणी माँ
राज राजेश्वरी स्वाहा स्वधा गौरी प्रणव रूपिणी माँ
सौम्या सौम्यतरा सत्या मनोहरा पूर्ण परात्परा माँ
रविशशि कुण्डला महाव्योम कुन्तला विश्वरूपिणी माँ
ऐश्वर्य भातिमा माधुर्य प्रतिमा महिमा मण्डिता माँ
रमा मनोरमा शान्ति शान्ता क्षमा सर्वदेवमयी माँ
सुखदा वरदा भकति ज्ञानदा कैवल्य दायिनी माँ
विश्व प्रसविनी विश्व पालिनी विश्व संहारिणी माँ

...क प्राण रूपा मूर्तिमती कृपा त्रिलोक तारिणी माँ
कार्य कारणभूता भेदाभेदातीता परम देवता माँ
विद्या विनोदिनी योगी जन रंजिनी भवभयभंजिनी माँ
मंत्र बीजात्मिका वेद प्रकाशिता निखिल व्यापिका माँ
सगुणा स्वरूपा निर्गुणा निरूपा महाभावमयी माँ
मुग्ध चराचर गाहे निरंतर तव गुण माधुरी माँ
(मोरा) मिलि प्राणे प्राणे प्रणमि (श्री) चरणे जय जय जय माँ

डाको माँ माँ माँ माँ माँ माँ माँ
बोलो माँ माँ माँ माँ माँ माँ माँ
गाओ माँ माँ माँ माँ माँ माँ माँ
भजो माँ माँ माँ माँ माँ माँ माँ
जपो माँ माँ माँ माँ माँ माँ माँ
डाको माँ माँ माँ माँ माँ माँ माँ
माँ माँ माँ *

---

* ११ पौष १३३६ रमना (ढाका) में रचित

नवजीवन के पथ पर

माँ के प्रथम दर्शन लाभ के बाद ही से संसार के अनेक विघ्न, बाधाओं और दुःख में भी नित्यानन्दमयी माँ की छबि तथा उनकी सरल स्निग्ध दृष्टि मुझे हर समय पागल की तरह आकुल कर रखती थी। उनकी कृपा प्राप्ति के लिए हर समय तीव्र उत्कण्ठा रहती थी। महासागर में जिस प्रकार तरङ्ग उच्छ्वास शून्य की (आकाश) ओर होता रहता है उसी प्रकार मेरे हृदय में माँ के चरणों को लक्ष्य कर दिन रात उच्छ्वास ध्वनि होती थी। कभी-कभी 'माँ' 'माँ' कह कर चिल्लाने में शान्ति बोध करता था। किन्तु आरम्भ में ऐसा सुयोग कम ही होता था।

श्री श्री माँ के शरीर में नाना भावों के दर्शन कर चुका था, इसलिए उनके सम्मुख जाकर मैं विस्मय और हर्ष में संकुचित हो जाता। मेरे मनमें तब ऐसा आता कि मैं—एकजन मूढ़ दीन हीन भिखारी उनके श्री चरणों में बैठने के सर्वथा अयोग्य हूँ। तब मैं माँ के चरणों के पास न बैठ दूर ही को खड़ा रहता था। प्रायः रोज ही सुबह उनके चरणों के प्रथम दर्शन का सौभाग्य मुझे ही होता था, क्योंकि उतने सवेरे बहुत ही कम लोग आश्रम जाया आया करते थे। किसी दिन माँ को नींद भरी आँखों से गद्गद् भाव से बिस्तरे पर बैठा पाता, कभी उनके चिरहास्य मधुर आँखों
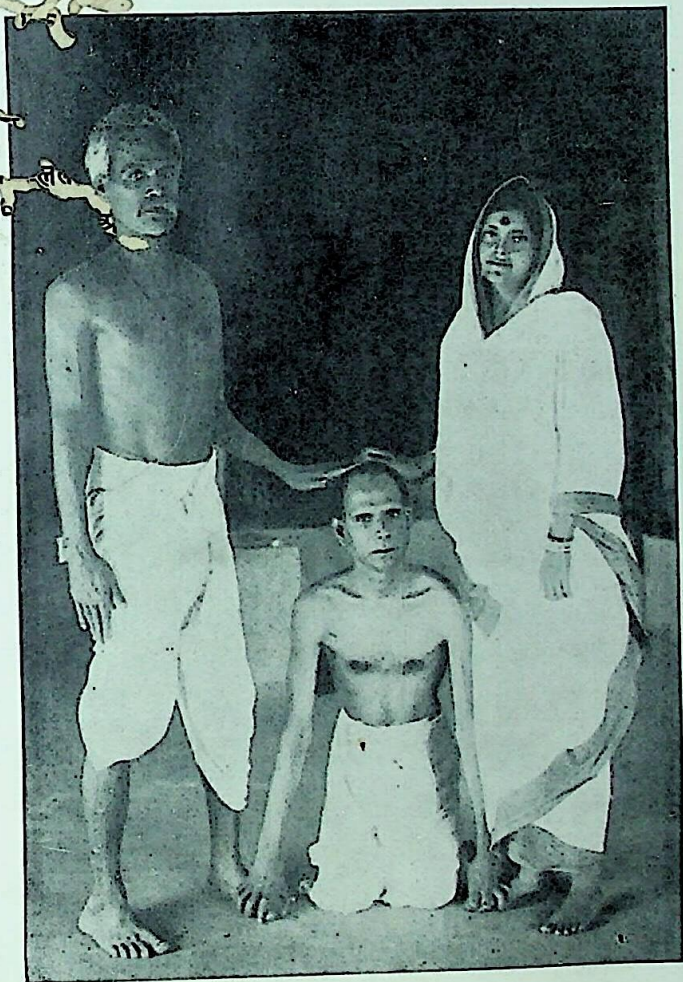
भाइजी का मस्तक पर माताजी और पिताजी का अभय परश।

तथा मुख से वात्सल्य और करुणधारा का उद्रेक देखता तो कभी पुनीत प्रसन्नता का शरत के आकाश की तरह निर्मल प्रसार देखता। उनके भावों के परिवर्तन के साथ उनके रूप में भी अन्तर होता चलता। कभी वृद्धा की तरह भी लगतीं। कभी हँसी खेल में ही हठात् अचल, अटल गाम्भीर्यपूर्ण मूर्ति हो जातीं। ऐसी अवस्था में देखा जाता कि माँ का शरीर कुछ फूल गया है एवं रुद्राणी की तरह एक देवी मूर्ति का अविर्भाव हुआ है। उस समय का उनका अट्टहास्य, रक्तनेत्र तथा हाथ पैर की चलन भंगी जिसने भी देखे हैं वह भयभीत हो गये। किन्तु थोड़े देर बाद ही उनकी सहज शान्ति लौट आती है।

किन्तु सभी समय मुझे माँ का आकर्षण इतना होता कि उनके पास जाए बिना अच्छा ही नहीं लगता, केवल थोड़ी देर के लिए ही माँ के चरणों में आश्रय मिल जाए, सदैव यही ध्यान रहता। मुझे हर समय ऐसा लगता मानो, "आओ" "आओ" कह कर माँ मेरी अन्तरात्मा को बुला रही हैं, तथा हर समय अपलक नेत्रों से मेरी ओर ही देख रही हैं। अनेक बार ही कल्पित दृढ़ता के साथ उनकी चिन्ता को अन्तर से हटाने की चेष्टा की। किन्तु वे विरुद्ध इच्छा शक्ति का उपहास कर मनबुद्धि को अनायास ही अपने अधिकृत कर लेतीं। मैं हैरान होकर चेतनाहीन सा पड़ा रहता। मातृभाव की इस चरम क्षुधा को शान्त करने का कोई उपाय नहीं खोज पाता था। इस प्रकार दुर्बल शरीर क्रमशः क्षीण होने लगा।

अन्त में १९२७ ई० ४ जनवरी को निराश हो खाट पकड़ ली। रोग के प्रारम्भ में छाती में असहनीय यंत्रणा का अनुभव किया। किसी भी औषधि से वह दर्द दूर नहीं हुआ। माँ एक दिन मुझे देखने आईं उन्होंने अपना हाथ मेरी छाती पर रखा, सब ज्वाला मानो शान्त हो गई हो। धीरे धीरे रोग बढ़ने लगा। डाक्टरों ने कहा कि यक्ष्मा रोग हो गया है। बाद में माँ एक दिन रात को आईं और मेरे बिस्तरे के पास ही बैठ कर अपने आप ही क्या क्या कहती रहीं। बहुत दिनों के बाद मैंने सुना कि उन्होंने रोग की मूर्ति से कहा था "जो करना था वह तो कर दिया, अब बस यहीं ठहर जा।" इसके बाद से माँ ने मुझे दर्शन न दिया। शोचनीय तथा मृतवत् अवस्था होने पर भी कई एक महीने माँ के श्री चरणों के दर्शनों का सौभाग्य नहीं हुआ।

ऐसा होने की भी आवश्यकता थी। कारण उनकी विरह यंत्रणा की आकुलता मेरी रोग यंत्रणा को काफी शान्त करती थीं। मेरा लक्ष्य हमेशा माँ के श्री चरणों ही पर रहता था, वह सर्वमयी माँ मेरे अन्दर और बाहर सब जगह विराजित थी। एक दिन शाहबाग में माँ बैठी थीं, उन्होंने देखा कि सबके मुँह में रक्त है। पिता जी यह सुन कर ही रात को मुझे देखने आए, उस समय मुझे रक्त वमन हो रही थी तथा मैं बिलकुल ही कातर हुआ पड़ा था। ऐसा अनेक बार ही हुआ है जब माँ शाहबाग में बैठी हुई मेरी खबर पाने से पहले मेरी उस समय की अवस्था के अनुरूप व्यवस्था बतातीं।

एक रात मेरी हालत खूब खराब हो गई। डाक्टरों ने जीवन की आशा कम बताई। उस समय रात के दो बजे होंगे, बाहर खूब वृष्टि हो रही थी चारों तरफ कुत्ते भोंक रहे थे। ऐसे समय मेरी साँसें चल रही थीं। इसी समय मैंने क्या देखा कि माँ मेरे सिर के दाहिनी ओर बैठी हैं। मुझे विस्मित होता देख माँ ने मेरे सिर पर हाथ रखा। तबसे यद्यपि मैं आठ दस महीने और बीमार रहा किन्तु हर समय मुझे ऐसा लगता कि माँ मेरे सिरहाने बैठीं हैं तथा वे मुझे मरने न देंगी। जब लगातार घण्टों खाँसी उठती तथा मैं दर्द से छटपटाता माँ का नाम जप करते करते कुछ शान्ति पाता। इसी बीच माँ को एक ख्याल आया, उन्होंने मुझे लक्ष्य करके ब्रह्मचारी श्रीमान योगेशचन्द्र को एक वर्ष के लिए गृहहीन अवस्था में भिक्षान्न से अपना जीवन बिताने के लिए पश्चिम की ओर भेज दिया।

कुछ महीने बाद मैं शाहबाग के पास एक सरकारी मकान में आ गया। माँ तब कुम्भ मेले में हरिद्वार गई थीं। मेरी हालत फिर गिरने पर माँ के पास ऋषिकेश एक तार भेजा गया। किन्तु माँ आईं नहीं। पीछे सुना कि जब तार पाकर पिताजी व्यस्त हुए तो माँ उनसे बोलीं "मुझे तो दीख रहा है कि वह मेरी गोद में निश्चिन्त लेटा है।"

रोग के प्रायः पाँच महीने बाद मैंने अपनी शक्ति अजमाने के लिए दीवाल पकड़ कर दो एक मिनिट चलने की चेष्टा की। उससे शाम ही को मुँह से रक्त आने लगा। डाक्टर ने यह सुनकर एक

दम विस्तरे पर लेटे रहने को कहा तथा इस नियम की रक्षा के लिए घर पर सभी को ध्यान देने के लिए कहा।

उक्त घटना के चार पाँच दिन बाद माँ ढाका लौटीं मुझे देखने को जब आयीं तो पूछा "कैसा है ?" मैंने कहा "और कुछ तो विशेष परेशानी नहीं है किन्तु इतने दिन से स्नान न करने के कारण कुछ बेचैनी लगती है।" तब वैशाख महीना था। खूब गरमी थी। माँ कुछ देर बैठ कर चली गईं। दूसरे दिन एक बजे के लगभग आईं। तब घर में सब ही सो रहे थे। मेरी ११, १२ साल की लड़की मेरी खाट के पास ही सो रही थी। माँ ने आकर कहा "तू स्नान करने को कह रहा था, यदि स्नान करना ही है तो यह जो पोखरा है उसमें स्नान कर आ।"

यह तालाब हमारे घर से प्रायः साठ-अस्सी गज दूर था। माँ की बात सुनते ही श्रद्धा वश मेरे शरीर में एक नई शक्ति का संचार हुआ। शरीर में हड्डियों के सिवा और तो कुछ था ही नहीं और साथ में लेटे रहने का आदेश भी डाक्टर का था। ऐसी अवस्था में मैं बिस्तरे पर से उठ हाथ में कपड़े ले नहाने चल दिया, पिताजी ने मुझे पकड़ लिया और साथ में मुझे तालाब तक ले गए। कमरे की देहलीज तीन चार हाथ ऊँची थी। सीड़ी से उतरा तथा सारे रास्ते चलकर गया। तालाब सर्व-साधारण का नहीं था, उसके एक किनारे यूनिवर्सिटी का मुस्लिम बोर्डिंग था। कुछ दिन पहले पी० डब्ल्यू० डी० ने नोटिस भी दिया था कि इस तालाब पर नहाना और कपड़ा धोना मना है। उस

दिन वहाँ बोर्डिंग में कोई दिखाई न दिया तथा घर में भी सब सो रहे थे। तालाब में उतर कर खूब आनन्द से स्नान किया, घर लौट कर गीले कपड़े अरंगनी पर सुखने को डाल कर विस्तरे पर लेट गया। मेरे लेटते ही लेटते लड़की जग गई, उसने देखा कि माँ उसके पास बैठी हैं। स्नान करने जाते समय रास्ते में मैदान के बहुत से हो चिरचेटे लपा) कपड़ों में लग गए थे, कपड़े उठाते समय खगाने (नौकर का नाम) ये सब देख मेरी स्त्री से कहा कपड़े हाथ में ले उन्होंने माँ से कहा कि डाक्टर का कहा न मान कर ये दोपहर को मैदान में घूमते हैं। माँ हँसने लगीं, कुछ भी न कहा। किस अज्ञात अकथनीय शक्ति से प्रेरित हो तालाब में जाकर स्नान करना तथा कोई भी न देख सका, यह सोच कर मैं विस्मित हुआ। तीन चार महीने के बाद जब आबहवा बदलने के लिए ढाका से जा रहा था तब यह बात सबसे पहले मैंने निरंजन को बताई। बाद में जब फिर काम करने लगा तो डाक्टरों को भी यह बताया लेकिन उन लोगों को विश्वास नहीं हुआ। मेरी स्त्री को भी विश्वास न हुआ किन्तु जब उसे कपड़ों में चिरचेंटे लगना याद दिलाया तो उसे विश्वास हुआ।

बीमारी ही में एक दिन चावल खाने की प्रबल इच्छा हुई। डाक्टरों ने मना क र दिया। निरंजन ने जाकर माँ से कहा "माँ, ज्योतिश की चावल खाने की इच्छा हो रही है, और डाक्टर मना कर रहे हैं, यदि उसका देहान्त हो जाए तो बड़ा दुःख रहेगा कि उसके मुँह में दो अन्न के दाने भी न दिए जा सके।" माँ ने हँस कर कहा

"तुम्हारी जब ऐसी इच्छा है तो उसे भात दिया जायगा।" इसके अगले दिन पिता जी ने शाहबाग से आकर सबसे छिपाकर मुझे दाल चावल खिलाया।

एक दिन सुबह ब्रह्मचारी कमलाकान्त ने मुझे कुछ चम्पा फूल लाकर दिए। तब माँ रोज ही एक बार मुझे देखने आया करती थीं। उस दिन खूब सुबह आकर चली गई थीं। चम्पा फूलों को देख मुझे दुःख हुआ कि माँ के चरणों पर चढ़ा न सका। शाम को कुलदा दादा एक बड़ा सुन्दर गुलाब का फूल ले उपस्थित हुए। इस फूल को भी माँ को न दे सका, यह सोचकर बहुत ही दुःख हुआ। टेबिल पर चम्पा फूलों के पास गुलाब का फूल भी रख दिया। इतने सुन्दर फूल और माँ के श्रीचरणों पर न चढ़ाए जा सके, इस दुःख से मेरा मन व्यथित था, ठीक इसी समय सहसा माँ ने बाहर से आकर कमरे में व्यस्त भाव से प्रवेश किया और सीधी टेबिल के पास जा त्रिभंग मूर्ति से खड़ी हो गईं, उन्मने भाव से तीन चार मिनिट मेरी ओर देखती रहीं फिर चली गईं। मुझे तब शान्ति हुई कि माँ ने फूलों को ग्रहण किया। देखा कि गुलाब का फूल नहीं था। दूसरे दिन माँ के आने पर फूल की बात मैंने पूछी।" क्या लिया, क्या नहीं लिया, पता नहीं लेकिन कुछ लिया जरूर था। यहाँ से धान कोड़ा के जमीदार के यहाँ गई थीं, वहाँ एक स्त्री के हाथ की पत्तल में कुछ दिया, जब वहाँ कीर्तन खतम हो गया तो लौटते समय एक डिप्टी के यहाँ गईं, वहाँ एक रोगिनी थी, उसके बिस्तरे पर भी हाथ में से कुछ गिरा

आईं।" खोज करने पर पता लगा कि पहले घर में गुलाब का फूल दिया था। दूसरे घर में चम्पा का फूल दिया गया, और वह रोगिणी अच्छी हो गई।

इस प्रसंग में माँ ने कहा, "आकुलता का भाव ही पूजार्चना का प्राण है। अन्तर में ही महाशक्ति का संचार है एवं सकल चेष्टा ही में सृष्टि, स्थिति और प्रलय के मूल विद्यमान हैं।"

अन्य एक दिन की बात है। मेरी बीमारी के दिनों पिताजी ने आदेश किया कि रोज शाहबाग से मेरे लिए अन्न-प्रसाद आएगा। वहाँ भोग लगते लगते एक दो बज जाते थे। फिर घर आने तक और भी देरी होती। रोज प्रसाद की इन्तजारी में इतनी देर तक बैठना सब को बुरा लगता था। पूर्णिमा को भोग रात को लगता था। उस दिन प्रसाद को लेकर घर में बहुत कुछ आलोचना होती। मुझे दुःख होता कि इतने गोल-माल में प्रसाद लाने का कुछ प्रयोजन नहीं है। उस रात को दो बज गए और शाहबाग से प्रसाद नहीं आया। मैंने सोचा कि आज शाम को मैं जो प्रसाद की प्रयोजन के विरुद्ध में सोच रहा था इसी लिए प्रसाद बन्द हो गया। मैं खूब रोने लगा। देखा आध घण्टे ही में प्रसाद आ गया। पीछे सुना कि ११ बजे जब प्रसाद भेजने के लिए माँ की अनुमति ली तो उन्होंने मना कर दिया। अभी माँ ने लेटे लेटे आदेश दिया "जल्दी जाकर ज्योतिश को प्रसाद दे आओ।" तब रात के तीन बजे थे। इस प्रसंग में माँ ने कहा

"मैं तो स्वेच्छा से कुछ नहीं करती हूँ, तुम लोग अपने ही भाव से हँसते और रोते हो।"

मैं आबहवा बदलने के लिए विन्ध्याचल गया। कलकत्ते में माँ से भेंट होने पर उन्हें विन्ध्याचल आने को कहा था, लेकिन उन्होंने इनकार कर दिया। मैं विन्ध्याचल पहुँच एक रात रोते रोते सुबह कर दिया। एक दिन बाद ही माँ और पिता जी वहाँ आ पहुँचे।

इस उपलक्ष्य में माँ ने कहा, "अपने को हटा कर ही तुमको पाया जाता है। साधन भजन का लक्ष्य यही है अहंकार चूर करना।"

विन्ध्याचल से मैं चुनार गया, माँ भी वहाँ आईं। मुझसे बोलीं "तू घूमने तो जा।" मैंने कहा, "शरीर में तो बल है नहीं, कैसे चलूँगा।" माँ अगले दिन सुबह मुझे साथ लेकर बाहर चलीं। समतल तथा पहाड़ी भूमि मिला, पाँच छै मील घूम ११ बजे के समय अपने स्थान को लौटे। पहाड़ से उतरते समय मेरे पैर आगे बढ़ने को इनकार कर रहे थे। माँ पीछे मुड़ कर बोलीं, "और ज्यादा दूर नहीं है।" तब वहाँ एक्के का अड्डा न होने पर भी दस मिनट में एक एक्का मिल गया। अन्यथा एक मील और चलकर गाड़ी मिलती। मुझे आशंका हुई कि इतने दूर चलने से कहीं फिर बीमारी न बढ़े। किन्तु कुछ नहीं हुआ।

इस प्रसङ्ग में माँ ने कहा "कर्म और धर्म दोनों क्षेत्रों में धर्म ही प्रधान अवलम्बन है।"

चुनार में अपने स्थान से कुछ दूर एक पेड़ के नीचे रात के नौ बजे पिता जी, मैं और माँ बैठे हुए थे। माँ बोलीं कि मैं

चुनार फोर्ट के कुएँ के पानी से स्नान करूँगी, और बच्चों की तरह जिद करने लगीं। मैं बोला, "घर से नौकर को बुलाऊँ।" माँ बोली "ना! यह नहीं होगा।" महाचिन्ता में पड़ गया। कारण इस स्थान पर सन्ध्या के पहले ही सब पानी खींच ले जाते हैं। मुझे दुःख होने लगा कि माँ का यह अनुरोध शायद पूरा न कर सकूँगा। उनके श्री चरणों में ही प्रार्थना करने लगा। इतने में क्या देखा कि एक आदमी हाथ में रस्सी बालटी लिए कुएँ का पानी ला रहा है। उसकी खुशामद कर पानी मँगवाया और माँ को स्नान करवाया।

इस प्रसङ्ग में माँ ने कहा "कुछ चाहने ही से मिल सकता है, लेकिन वह चाहना मन से मुँह से सब भावों को एक करके चाहना हो।

मैं पीड़ित अवस्था में गिरिडि में था। एक दिन माँ को देखने के लिए प्राण बड़े व्याकुल हुए। तभी एक दिन देखता हूँ कि माँ सदलबल आ उपस्थित हुई।

इस प्रकार निरन्तर बहती हुई अहेतु की कृपाधारा ने कितनी बार प्राणों को शान्ति दी उसकी सीमा नहीं है।

मैं कलकत्ता आया। डाक्टरों ने परीक्षा कर कहा कि नौकरी से कोई लाभ नहीं है। किसी अच्छी जगह आराम से रहो यदि बचना चाहते हो। जब भी खाँसी के साथ खून आता था।

माँ ने आदेश किया "तू फिर से जाकर अपना काम देख।"

ढाका आकर पहले दिन जब मैं आफिस गया तो माँ और पिताजी मुझे साथ ले जाकर कुर्सी पर बैठा कर आए।

तब फिनलो साहब बंगाल कृषि विभाग के डाइरेक्टर थे एवं मेरे अफसर थे। वे मुझसे स्नेह करते थे तथा खूब मानते भी थे। आफिस के काम काज के विषय में उन्होंने कहा "तुम जितना कर सको उतना करना बाकी मेरे पास भेज देना।" एक बार उन्होंने मुझसे पूछा "अच्छा बताओ तो इतने कठिन रोग से तुम किस प्रकार मुक्त हुए।" मैंने कहा, "रमना आश्रम में जो माताजी हैं उनकी कृपा से। उन्होंने कोई दवा, ताबीज या कवच मुझे नहीं दिया। यद्यपि डाक्टरों की दवा भी हो रही थी, किन्तु बीमारी के शुरू से आखिर तक उनकी कृपादृष्टि ही मेरा एक-मात्र सहारा था।" साहब ने मुझसे कहा, "अविश्वास करने की जरूरत नहीं है, हम लोगों के यहाँ भी इस प्रकार की कृपा के विषय में सुना जाता है।

एक सन्ध्या को मेरा पड़ोसी अस्सी बरस का वृद्ध श्यामचरण मुखोपाध्याय हमारे घर आया। माँ का प्रसङ्ग उठने पर मैंने उनसे कहा, "माँ की कृपा ही से आज तक मैं जीवित हूँ।" वे बोल उठे, "किसी की कृपा से क्या किसी की उमर बढ़ जाती है।" आलोचना करते करते ही वे सहसा चुप हो गए तथा थोड़ी देर बाद ही चले गए। सुबह फिर आकर मुझसे बोले "कल हठात् ऐसे क्यों चला गया, जानते हो? जब हमअगले दिन लोगों का वादविवाद हो रहा था, तब मैंने आपकी कुरसी के पीछे

दीवाल पर सूर्य की तीव्र ज्योति के तरह एक गोलाकार प्रकाश पुँज देखा। तब बाहर भी अंधेरा था कमरे में भी प्रकाश न था, चारों तरफ देखने पर भी उस प्रकाश का कोई कारण नहीं मिला। तब मैंने सोचा कि आपको बताने से पहले मैं स्वयम् चिंता करके देखूँगा। कल रात को सोचते सोचते इस निर्णय पर पहुँचा कि महापुरुषों की कृपा से सब सम्भव है। यथार्थ में आप पर माँ की असीम कृपा है एवं वे आपकी हर समय रक्षा करती हैं।

माँ के साथ प्रथम साक्षात के तीन चार महीने बाद निरंजन ने एक दिन शाहबाग में माँ से कहा, "माँ! अनेक समय यह इच्छा होती है कि आपके आश्रम बन जाने पर मैं और ज्योतिश मर कर आश्रम में ब्रह्मचारी बन कर रहें।" माँ मेरी ओर देख कर बोलीं "तू जो चुप करे बैठा है इस शरीर से ऐसा नहीं कर सकता है?" तीन चार साल बाद बीमारी से मुक्त हो काजकर्म शुरू कर देने पर एक दिन उसी बात को याद दिलाकर माँ बोलीं "देखा, कैसे तेरा पुनर्जन्म हुआ।" इसके बाद माँ के गले में एक सोने का हार जनेऊ की तरह था उसे हाथ में लेकर, "बोलीं इधर तो आ मैं तुझे यह जनेऊ पहिनाए देती हूँ, आज से तू ब्रह्मचारी हुआ समझा।"

आश्रम में जिस छोटे कमरे में माँ रहती थीं उसकी जमीन अपनी बुद्धि से ठीक करी थी। कमरे की लम्बाई आठ हाथ तथा चौड़ाई साढ़े पाँच हाथ थी, चारों तरफ बरामदा था, माँ उसके दोनों तरफ सोती थीं। माँ ने पहले बताया था कि अतीत-

काल में जो संन्यासी यहाँ थे उनमें से मैं भी एक था। बहुत दिन बाद कथा प्रसङ्ग में माँ ने अपने सोने की जगह को लक्ष्य कर कहा, "इस देह के आने से पहले ही तू ने अपने भाव और कर्मों की निष्पत्ति के लिये यह स्थान अपने लिए ठीक किया था।" मेरा कितना बड़ा सौभाग्य कि माँ ने स्थूल शरीर से मेरी जन्मान्तर की अध्यात्म कर्म भूमि पर आसन ग्रहण किया। मेरी तपस्या भी यही थी। कारण जिस दिन उनके श्री चरणों का दर्शन किया उसी दिन माँ मुझे सर्वदेवमयी लगीं।

१९२९ ई० के अन्तिम भाग से प्रायः तीन वर्ष तक मातृ दर्शन की आकांक्षा लिए हुए मैं खूब सवेरे रमना आश्रम जाता। इसके लिए रात के प्रायः दो बजे ही उठ कर नित्य कर्म समाप्त कर साढ़े चार बजे चल देता। किसी दिन घड़ी में गलती देख कर ही चल देता। और रास्ते में किसी के घर घड़ी का घण्टा सुन कर पता लगता कि अभी तो काफी रात है। तब या तो रमना की परिक्रमा करता नहीं तो रमना काली बाड़ी के दरवाजे पर बैठ सुबह होने की प्रतीक्षा करता। प्रायः पाँच बजे आश्रम जाकर माँ के साथ इधर उधर मैदान में घूम कर साढ़े दस या ग्यारह बजे घर लौटता। किसी किसी दिन बारह एक भी बज जाता। तब माँ के सामने बैठता नहीं था। शरीर किसी अज्ञात आनन्द से भर कर खड़ा ही रहना चाहता था। कोई यदि बैठने को कहता तो संकोच लगता। माँ किसी किसी दिन ही बातचीत करतीं, अधिकांश समय वह चुप ही रहतीं। मैं भी चुपचाप पीछे पीछे चलता।

एक दिन एक वृद्ध वकील (अश्विनीकुमार गुह) सुबह मैदान में घूमते हुए माँ से बोले, "मैं तुम्हें देखने नहीं आता हूँ, बल्कि तुम्हारे बछड़े को देखने आता हूँ, जो सरदी, गरमी, बरसात रोज इतनी दूर आता है, तुम्हारे संग संग चलता है, उसे देख मुझे बड़ा आनन्द होता है।" मैंने उनसे कहा, "ऐसा आशीर्वाद करिए जो मेरा शेष जीवन भी इसी प्रकार कट जाए।" वृद्ध ने मुझे छाती से लगा लिया और गद्गद् कण्ठ से बोले "तुम धन्य हो।"

अनेक दिन देखा कि रात के अन्तिम पहर में खूब वृष्टि हो रही है। मैं माँ का नाम स्मरण कर चल दिया और मेंह बन्द हो गया। बरसात क्या भीषण सरदी में भी माँ के दर्शनों के नित्य कर्म में प्रायः तीन साल तक कोई बाधा नहीं हुई।

उन्हीं दिनों एक महीने तक ढाका में हिन्दू मुसलमान विरोध चला था। इस झगड़े के होने से पहले एक दिन माँ सहसा बोल उठीं, "भयानक।" ऐसा बोलने का कारण पूछने पर माँ बोलीं, "मुझे ऐसा दीख रहा है कि शहर में घर-घर में हाहाकार मच रहा है।" बाद में जब झगड़ा बहुत बढ़ गया, इतनी विभिषिका में भी मेरा आश्रम जाना बन्द नहीं हुआ। मेरे पड़ोसी श्रीयुक्त भवानीप्रसाद नियोगी मुझ से छोटे भाई की तरह स्नेह करते थे। वे प्रायः मुझसे कहते, "तुम जब तक नहीं लौट आते हो तब तक मुझे आशंका रहती है। शहर में इतनी मारकाट हो रही है, ऐसे समय में इतने सुबह बाहर जाना क्या ठीक है?" मैं सोचता

जब माँ ने ही इस विषय में मुझे निषेध नहीं किया तब निश्चय ही मेरे लिए कुछ भय नहीं है। मैं अपने क्रम से जाता रहा।

एक दिन आश्रम जा रहा था। रास्ते में बिजली जल रही थी। रास्ता निर्जन था। ढाका डाक बँगला से १०० गज आगे चल कर मैंने देखा कि मेहगनि पेड़ के पीछे से एक बलिष्ट लोग ने जिसका सब शरीर कपड़े से ढँका था मेरा पीछा किया। उससे पूछने पर कि 'वह कहाँ जायगा' उसने कहा, "मैं भी आपके साथ जाऊँगा।" मैंने कहा, "मैं तो रमना आश्रम जा रहा हूँ।" वह बोला, "मैं भी जाऊँगा।" तब मुझे डर हुआ। मैंने पीछे मुड़ कर देखा वह मेरे बहुत ही निकट आ गया था। इसी समय मैं जोर से चीत्कार कर उठा, "नहीं, तुम मेरे साथ नहीं जा सकते हो।" ऐसा कह मैं जल्दी जल्दी चलने लगा। मैंने और इधर उधर नहीं देखा, बहुत दूर जाकर मुड़ कर देखा कि वह आदमी कठपुतली की तरह उसी जगह खड़ा था। रमना आश्रम जाकर देखा तो स्नेहमयी जननी फाटक पर खड़ी मेरी ओर देख रही थीं। मैं श्रीचरणों में प्रणाम किया और घटना बताई। वे चुप रहीं। कुछ दिन बाद सुना कि उस जगह एक खून हुआ था।

अभियान

जीवन संग्राम में पहला प्रयोजन लक्ष्य, दूसरा प्रयोजन दृढ़ संकल्प एवं तीसरा एकान्त आत्मनियोग होता है। इन तीनों के संयोग से यदि कोई भी काम किया जाय तो एकदम फल बिना देखे हुए भी, शुभ कर्म के संस्कार मूल में रहते हैं। सुयोग पाकर अपने आप ही वे विकसित हो जाते हैं।

बीमारी के बाद फिर तीन साल तक नौकरी की। एक दिन आश्रम में माँ एक फूल हाथ में लिए उसकी पखुड़ियाँ तोड़ती हुई मुझसे बोलीं, "तेरा अनेक भाव तो झड़ गया और अनेक अभी बाकी है। सब झड़ जाने पर इस फूल के डंठल की तरह केवल सूक्ष्म शक्ति रूप में मैं तेरे भीतर रहूँगी, समझा!" यह कह कर हँसने लगीं। मैं बोला, "माँ! क्या उपाय करने से वह अवस्था आएगा?" माँ बोलीं, "रोज इसी बात को एक बार याद करना, और कुछ नहीं करना होगा।" सचमुच में यह चिन्ता नित्य कर्म का ही अङ्ग हो गई, मेरे चित्त की चंचलता जाती रही और एकाग्रता आती गई। जब मन इधर उधर भटकता तो लक्ष्य पर केन्द्रित करने के लिए मन में प्रबल आग्रह होता। इससे मुझे यह विश्वास हो गया कि जप ध्यान और साधन भजन करके मनुष्य जो लाभ करता है वह महात्माओं की सहज वाणी के बल से लाभ

किया जा सकता है। छः महीने बाद घूमते घूमते माँ ने कहा, "देख तेरा कर्म जीवन शेष होने जा रहा है।" मैंने सुना किन्तु मन ने उतनी गम्भीरता से नहीं सुना। तब मुझसे श्रीमद् भगवानचन्द्र ब्रह्मचारी भी प्रायः कहते, "तुम्हें तो भय्या लेने के लिए हिमालय से आदमी आ रहा है, प्रस्तुत रहना।" उनका बाल सुलभ स्वभाव था, मैं सोचता शायद ये हँसी कर रहे हैं।

कई एक महीने के बाद मैंने चार महीने की छुट्टी ली। सोचा था किसी पहाड़ पर आबहवा बदलने के लिए जाऊँगा, इसी बीच में १९ वैशाख १३३९ बंगाब्द (२ जून १९३२ ई०) वृहस्पतिवार को रात के साढ़े दस बजे माँ ने श्रीमान योगेशचन्द्र ब्रह्मचारी को भेज मुझे घर से बुलवाया और पूछा, "मेरे साथ चल सकता है ?" मैंने जिज्ञासा की, "कहाँ जाना होगा ?" माँ ने कहा, "जहाँ भी जाएँ ?" मैं चुप रहा। कुछ देर बाद फिर बोलीं, "चुप क्यों हो गया ?" घर पर किसी से कुछ कह कर नहीं आया, संसारी की तरह बोल उठा, "घर से रुपया पैसा तो लाना होगा।" माँ बोलीं "यहीं से जितना संग्रह कर सके कर ले।" मुख से तो अच्छा कह दिया किन्तु मनमें मानों पुत्र परिवार पूछ रहे हों, "कहाँ जा रहे हो ?"

खैर जो भी हो एक कम्बल, एक रजाई, एक दरी और एक धोती ले मैं, माँ व पिताजी ढाका स्टेशन को रवाना हुए। स्टेशन पर पहुँच माँ ने कहा, "ये गाड़ी जहाँ तक जा रही है वहाँ तक का टिकिट ले ले।" जगन्नाथ गंज तक का टिकट लिया गया।

पास में रुपया कम था, अकस्मात कटियार स्टेशन पर एक पुराने मित्र से भेंट हो गई, उन्होंने १००) कुछ फल तथा खाना आदि दिया। वहाँ से लखनऊ का टिकट लिया। रास्ते में गोरखपुर उतरे। वहाँ पर गोरखनाथ के मन्दिर में दर्शन कर लखनऊ पहुँचे। अगली गाड़ी देहरादून एक्सप्रेस थी। माँ बोलीं, "जहाँ तक गाड़ी जाए वहाँ का टिकट ले।" दूसरे दिन देहरादून में धर्मशाला में जाकर उतरे। नई जगह, नए आदमी, सब कुछ नया। माँ बोलीं, "मुझे तो सब पुराना लग रहा है।" कहाँ जायेंगे कुछ निश्चय नहीं। मैं पिताजी दोपहर को घूमते घूमते काली बाड़ी नामक जगह गए, वहाँ जाकर पता लगा कि तीन चार मील दूर रायपुर गाँव में एक शिवालय है, स्थान निर्जनप्राय है। मन्दिर एकान्त वास के लिए अच्छा है। घटना चक्रानुसार एक रायपुर के पण्डित ठीक उसी समय आ उपस्थित हुये। उनके साथ बातचीत कर अगले दिन रायपुर गए। पिताजी को वह स्थान खूब पसन्द आया। माताजी का मतामत पूछने पर उन्होंने कहा, "तुम लोग देख भाल लो, मुझे तो सब अच्छा है।" ८ जून १९३२ ई० बुधवार सुबह १० बजे से उस मन्दिर में माँ पिताजी रहने लगे।

इसके बाद की घटनाएँ श्री श्री माँ की इच्छा होने पर बाद में प्रकाशित की जाएँगी।

श्री श्री माँ

श्री श्री माँ के स्वरूप को धारणा करना हमारी बुद्धि की पहुँच के बाहर है। यद्यपि माँ हर समय कहती रहती हैं, "मैं तो तुम लोगों ही की पगली लड़की हूँ।" फिर भी इस पगली लड़की के चलने फिरने की ओट में, उसकी क्रीड़ा कौतुक के पीछे भगवती शक्ति का मूर्तिमय प्रकाश रहता है।

पश्चिमी मनीषी एमरसन ने कहा है, "संसार में रह कर गृह-धर्म अकुण्ठित रूप से निर्वाह करना अथवा निर्जन गिरिकन्दरा में साधन करना सहज है। किन्तु यथार्थ में प्रकृत सत्य और महत्व में वे ही प्रतिष्ठित हैं जो जनता के जीवन के घात प्रतिघात में भी निराशा रहित और पूर्ण माधुर्य के साथ रह सकते हैं।"

श्री श्री माँ लोक समुदाय की दुश्चिन्ताओं में भी रात दिन रहती हुई, अपना अक्षय आनन्द का भण्डार सबके लिए उन्मुक्त रखती हैं, उनकी निर्मल शान्त दृष्टि, प्रतीत हास्य मुखर अद्भुत रूप तथा जीवन की स्वच्छन्द गति प्राणिमात्र की अनेक वासनाओं की पूर्ति करती है। इस कारण उनको विश्वजननी का मूर्तिमय रूप कहना अनुचित न होगा।

माँ को कोई 'साक्षात भगवती का अवतार' कोई 'जीवन्मुक्ता साधिका माँ कहता है। हम लोगों को ऐसा लगता है "जिसकी

दृष्टि में वे जो हैं, वही हैं।" प्रथम दर्शन में ही उनका वात्सल्य पूर्ण मधुरभाव स्पन्दन धर्मविमुख प्राणी के हृदय में भी भावान्तर उपस्थित कर देता है। उनके सामीप्प से शुष्क प्राण में भी भगवत् भाव की स्फूर्ति होती है, और मनुष्य का हृदय एक विराट सत्ता के स्पन्दन, अनन्त समुद्र के कलनाद से द्रवीभूत हो जाता है।

माँ की दीक्षा व गुरुलाभ के विषय में पूछने पर माँ ने कहा था। "बचपन में पिता-माता, गार्हस्थ्य जीवन में पति एवं सदैव समस्त संसार मेरा गुरु है, लेकिन यह ध्यान में रखो कि गुरु कहने से एकमात्र वही हैं, वही।"

लौकिक दृष्टि से माँ जिस प्रकार आदर्श कन्या, आदर्श स्त्री तथा आदर्श माँ के रूप में सम्मुख आती हैं, आध्यत्मिक दृष्टि से भी उनकी वाणी में राजयोग, की विविध प्रक्रियायें साधना के विचित्र मार्ग नित्यमुक्त द्वैत, अद्वैत द्वैताद्वैत आदि सब स्फुटित होते हैं। कीर्तन में उनका जो भाव देखा गया है उससे उनको परम वैष्णव कहा जा सकता है, शिव, दुर्गा, काली आदि देवी देवताओं की पूजा में तांत्रिक अनुष्ठान में, अथवा वैदिक यज्ञादि कर्मनिष्ठा में जो उनकी सहज कुशलता दिखाई देती है, उससे उनको सर्वदेव देवीमयी परम देवता कहने में अत्युक्ति न होगी।

जीवन के आरम्भ ही से नित्यकर्म की तरह साधना की जो अलौकिक विभूतियों का दर्शन हुआ, उसके आधार पर तो माँ को परमयोगी कहा जा सकता है। वैदिक भाषा में सूक्त और

स्तव जो उनकी वाणी द्वारा मूर्तिमान हो उठे, उनको पढ़ने पर उन्हें मंत्र द्रष्टा ऋषि कहने में कोई दुविधा न होगी।

ज्ञान मार्ग, भक्तिपथ कर्मयोग, समाधियोग आदि में उनके स्वतः प्रमाणित तथा अनुभवसिद्ध सिद्धान्त अनेक प्राचीन और प्रवीण प्राच्य और प्रतीच्य के दार्शनिकों को आश्चर्यान्वित किया है। ज्ञान, योग, भक्ति आदि विशेष विशेष खण्ड भावों के साधकों में तथा माँ में यही पार्थक्य है कि माँ में ये सब खण्ड-भाव सुन्दर समन्वय के साथ प्रकाशित हुए हैं। इन्हीं के द्वारा जीवमात्र का कल्याण होता है।

उनकी सुन्दर मधुर मूर्ति, उनका धैर्य, क्षमा, सरलता, तथा चिरआनन्दमय क्रीड़ा कौतुक, उनकी मङ्गलमयी दृष्टि, समस्त प्राणिमात्र पर करुण कोमल समभाव, उनकी द्वन्द्व रहित इस युग के लिए अभूतपूर्व तथा अनुपम नित्ययुक्त स्वभाव है। उनको साधिका नहीं कहा जा सकता, कारण कि जिन्होंने उन्हें बचपन से अब तक देखा है, वे सभी कहते हैं माँका कर्म और भाव में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है और उनकी साधन प्रचेष्टा अथवा तपस्या किसी ने भी कभी नहीं देखी है।

सब अवस्था में सदैव उनके शरीर से जो लौकिक और अलौकिक विभूतियों के दर्शन हुए हैं, वह सब भक्तों के कल्याण के लिए स्वयम् प्रकाशित हुई हैं। उनकी इच्छा अथवा अनिच्छा से नहीं हुई है। जलती हुई होमाग्नि में जब हविधारा दी जाती है तो अग्नि अपने स्वभाव के अनुसार प्रदीप्त हो उठती है, हवि की

गन्ध से दिशाएँ पवित्र आमोदित हो जाती हैं, और थोड़ी देर बाद आहुति का कोई भी चिन्ह यज्ञाग्नि में नहीं दीखता है, जब कि अग्नि अपनी दीप्ति के साथ जलती ही रहती है। उसी प्रकार श्री माँ को भक्तों द्वारा प्रेमअर्घ्य तथा श्रद्धांजलि अर्पित कर देने पर माँ का वात्सल्य, स्नेहातिरेक उनकी वाणी, दृष्टि तथा मुखश्री पर प्रतिभासित हो उठता है एवं दूसरे क्षण ही वह सब उनकी सहज शान्त सौम्य माधुरी मूर्ति में सन्निहित हो जाता है।

उनमें इच्छा अनिच्छा का द्वन्द्व नहीं है। प्रवृत्ति निवृत्ति का द्वन्द्व भी उनकी इच्छाशक्ति से कभी स्फुरित होता नहीं देखा गया है। विश्व के कल्याण के लिए जो धर्म एवं कर्म हैं उनका मूलाधार सनातन सत्य, जो अनादिकाल से मानव चित्त में स्वयम् प्रकाशित होता आ रहा है, वही सत्य धर्म की ज्योति माँ के चारों ओर है, उसका आभास व संकेत माँ के सब लौकिक अलौकिक कार्यों द्वारा ही मिल जाता है। माँ के जीवन से यह भली-भाँति दर्शित होता है कि स्वयम् परिपूर्ण रह कर किस प्रकार मनुष्य के सांसारिक व्यवहारों की रक्षा करते हुए अध्यात्म राज्य में स्वाधीन रहा जा सकता है।

वर्तमान युग की बढ़ती हुई साधु संन्यासियों की संख्या देखते हुए यह विचार आना स्वाभाविक है कि क्या उन लोगों द्वारा मानव समाज का कुछ कल्याण हो रहा है। गृहधर्म और समाज-धर्म से बाहर जाकर गृहधर्म और समाजधर्म का साधन पथ सुगम बनाना कुछ सहज नहीं है। यह ठीक है कि निर्जनगिरि

कन्दरा में अनेक वर्षों तक तपस्या कर किसी किसी ने आध्यात्मिक उन्नति लाभ की है किन्तु उन लोगों की इस उच्चतम अवस्था द्वारा जनसाधारण के जीवन क्रम में कोई उन्नति नहीं होती है। आश्रमों का निर्माण होता है, उसकी चूड़ा आकाश भेदी बनाई जाती है, पूजा आरती से आश्रम का वातावरण मुखरित किया जाता है, अन्नशालाओं में कंगालों को अन्न बाँटा जाता है, किन्तु इतना सब अर्थ व्यय और परिश्रम से बने आश्रम की भित्ति अपना प्रेरणा और प्रभाव से समाज में ज्ञान, प्रेम और भक्ति का संचार नहीं कर पाती है, वरन् देखा जाता है कि समाज में दिन पर दिन हिंसा, द्वेष, तथा कलह की वृद्धि हो रही है, ऐसे समाज में साधन भजन अबाध गति से नहीं हो सकता है। जिस साधना के बल से शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य तथा शक्तिलाभ हो, जिसके प्रभाव से जीव में ऐश्वर्य भाव स्फुरित हो, स्वयं अपने को समर्थ बना दूसरे को भी समर्थ बना सके, निज की निर्मल उन्नति कर दूसरे की हितचिन्ता कर सके, ऐसी साधना का क्षेत्र आज दिन पर दिन संकुचित होता जा रहा है।

श्री श्री माँ का जीवन प्राणिमात्र के मङ्गल और कल्याण के लिए है, उन्होंने अपने समस्त जीवन के भार को जन साधारण को देकर स्वयम् जगत के कल्याण में लीन रहती हैं। व्यावहारिक दृष्टि से ऐसी कोई वस्तु भी नहीं है जो उनकी निज की हो, सब जगह उनकी जगह, सब जीव उनकी सन्तान और परिजन हैं। उनके अनुसार सब धर्म एक उसी की खोज के लिए हैं। वे कहती

हैं, "मुझे तो यह संसार एक बाग लगता है, तुम सब इस बाग के फूल की तरह खिल रहे हो। मैं इस एक ही बाग में इधर उधर घूमा करती हूँ।"

अन्य एक समय उन्होंने कहा "मेरा निज का कुछ कहने या करने का प्रयोजन नहीं है, पहले भी नहीं था, अब भी नहीं है और होगा भी नहीं। जो कुछ प्रकाश पाया, पा रहे हो तथा पाओगे, सब तुम्हारे कल्याण ही के लिए है, इस शरीर को यदि कुछ निजस्व कह कर चीज है तो समस्त संसार ही निजस्व है।"

सृष्टि लीला को अपार विभूति मातृभाव जिसकी समस्त विश्व में दीप्ति है, उसी अखण्ड मातृभाव का सर्वतोमुखी प्रकाश श्री श्री माँ की सब बातों, कार्यों तथा लौकिक व्यवहार में मिलता है। भक्तों के निकट छोटी लड़की का-सा अनुरोध, शरणागत आर्त के प्रति मातृरूप में अभयदान, जिज्ञासु के लिए वाणी रूप में सत्य ज्योति प्रकाश, सभी कुछ इस महाशक्ति की लीला विलास है।

जगत के सब धर्मों सब वर्णों और सब जातियों के प्रति सब आश्रमों सब विषयों, सब प्रकार की शिक्षा में समान भाव में श्रद्धा और अनुराग प्रदर्शित करती हुई 'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' इस महावाक्य को अपने जीवन में ही प्रतिपादित करती हैं। वह कहती हैं "सब धर्म ही एक धारा और सब धारा भी एक, हम सब भी एक हैं।" किसी के कभी पूछने पर "आप कौन जात हैं?" आप का घर कहाँ है? माँ हँसते हँसते यह जबाब देती हैं, "व्यवहारिक हिसाब से तो यह शरीर पूर्व बंगाल का तथा जाति से ब्राह्मण है किन्तु

इन सब कृत्रिम उपाधियों से अलग करने पर "यह शरीर तुम लोगों के परिवार का ही है।"

कभी माँ को कहते सुना गया है "इस शरीर को तुम विश्वास करो। तुम लोगों का अखण्ड विश्वास ही आँखें खोल देगा।" कभी यों भी कहती हैं "मैं तो कुछ जानती नहीं तुम लोग जो सुनाओ या सुनना चाहो वही मैं बोलती हूँ।" कभी फिर यों "यह शरीर तो एक गुड़िया है तुम जैसा खेलाना चाहो वैसे ही खेलती रहती है।"

उनकी इन सब वाणियों से यही विश्वास होता है कि माँ का शरीर जगत की मूलाधार प्रच्छन्न मातृ शक्ति का मूर्तिमान रूप है। सृष्टिमय परमात्मा की शक्ति से उनकी सब चेष्टाओं का विकास है तथा उन्हीं में लोप है। द्वैत का उनमें निराकरण ही हो गया है। वह कभी कभी कहती हैं "एकमात्र तुम्हीं सब तथा एकमात्र मैंही सब।"

अन्य एक दिन कहा था, "मैं भी तो तुम्हीं, एकमात्र वे हैं तभी तो मैं और तुम।" यदि केवल एक बार विश्वास और श्रद्धा से जो यह बोल सके कि "माँ तुम आओ तुम्हारे बिना और नहीं चल सकता" तो माँ सच में आ उसे दर्शन दे तथा अपनी गोदी में ले लें। दुःख की मार थोड़ी देर की है, उन्हें रहस्यमयी आश्रय न समझो। याद रखो वह हर समय तुम्हारे पास प्राणशक्ति की तरह विराजित है। फूल का जिस प्रकार डंठल होता है जीवों का भी वह उसी रूप में आश्रय हैं। ऐसा करने से तुम्हें कुछ करना न होगा, वह तुम्हारा सब भार हल्का कर देंगी।

श्री श्री पिताजी

पिता जी ने अपना स्नेह नाना प्रकार से मेरे ऊपर बर्षा कर मुझे अपने धर्मपुत्र के रूप में ग्रहण कर मेरे जीवन को धन्य किया। प्रथम दर्शन से ही मैंने पिताजी का प्यार पाया। यही स्नेह मुझे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में संरक्षित करता हुआ भावयोग में महागुरू के रूप में मेरा पथनिर्देश किया। पहले मैं सोचता कि बिना माँ के पाए पिता को नहीं पा सकता किन्तु आज बाध्य होकर मुझे यह कहना पड़ रहा है कि पिता जी को पाकर ही उन की दया के द्वारा ही माँ को पाया। लौकिक व्यवहार के अनुसार माँ का दर्शनलाभ उनका सर्वहितकारी महत्व तथा करुणा के बिना किसी के भी भाग्य में नहीं प्राप्त हो सकता है। ऐसी अनेक संन्यासिनी माताओं की बातें भी सुनी हैं जिन्होंने पति के विरुद्ध होने पर भी घर में धर्मजीवन बिताया।

हम लोग सांसारिक जीव हैं, दुःख दैन्य ही में जीवन पथ पर चलते रहते हैं, पिताजी ने हम लोगों के मन की अनेक मलीनता को दिखा हमारे मन को निर्मल किया। मेरे दारुण रोग में उनकी शुभचिन्ता तथा आशीर्वाद मेरे पूनर्जीवन दान का प्रधान उपकरण हुई। यह कहना अनुचित न होगा कि एक दिन सिद्धेश्वरी आसन जाने पर मेरी पुरानी बीमारी फिर से न उखड़ जाए, इस डर से हठात् पिता जी भावावेश में मुझे माँ की गोद में खींचकर

बिठाते हुए बोले, "तुम्हारा लड़का तुम्हें सौंप रहा हूँ, अब उसको रक्षा का भार तुम पर है।"

श्री श्री माँ से सुना कि अनेक वर्ष पहले पिता जी की दोनों भौंहो के बीच एक ज्योति किरण का प्रकाश माँ ने देखा था। जप, तप, यज्ञ और पूजा में पिता जी की एकाग्रता और एकनिष्ठता असाधारण है।

पिताजी के अन्दर कौन सी अद्भुत शक्ति चुपचाप काम करती है यह समझने की शक्ति हमारी नहीं है। वे वास्तव में ही भोलानाथ हैं, अपना आनन्द दूसरों को देकर उनके आनन्द में ही भरपूर रहते हैं। जो उनके संसर्ग में आए वे ही जानते हैं। उनके चरित्र में एक अपूर्व मधुरता है। उनकी आशिष के लिये सभी लालायित रहते हैं बच्चों के साथ उनका हास परिहास छेड़छाड़ दर्शनीय है। उनका बच्चों जैसा सरल स्वभाव को देख श्री श्री माँ भी उनका "गोपाल" कह कर परिचय देती हैं, पिताजी का हृदय इतना विशाल तथा उदार है कि वे माँ को शक्ति रूप में पूजा करने में तनिक भी संकुचित नहीं होते। पिता जी को बहुत से क्रोधी समझते हैं। किन्तु जो उनके संसर्ग में आकर तनिक घनिष्ट प्राय हुए हैं वे देखेंगे कि जिस प्रकार बड़वाग्नि की शिखा के मूल में शीतल जल का प्रस्रवन रहता है, ठीक उसी प्रकार उनके क्रोध की ओट में भी स्नेह और करुणा की धारा बहती है। दूसरों की मंगल कामना, हितसाधना ही उनका व्रत है, वे किसी को विमुख नहीं करते हैं।

पिताजी कहते हैं "भोग और त्याग एक ही मन की दो जुँड़वाँ मूर्ति हैं। यह शरीर के बाह्य आवरण मात्र हैं। जितना जीव का ईश्वर भाव बलीयसी रहता है उतनी ही स्पष्ट रूप से दोनों को अविच्छिन्न मंगल मूर्ति का उसे ज्ञान रहता है।

ऐसा दिन शीघ्र ही आवेगा जब पिताजी के चरणों में बहुत से आर्त जीव परमार्थ लाभ की आशा में आवेंगे। ❀

❀ १३४५ बंगाब्द २४ वैशाख देरादून में पिताजी का महानिर्वाण हुआ।

अपनी बात

मेरे बन्धु बान्धव स्वजन परिचित यहाँ तक कि अपरिचित के मन में भी मेरे वर्तमान जीवन के प्रति जिज्ञासा है, इस कारण बाध्य होकर मुझे अपने विषय में भी कुछ लिखना पड़ रहा है।

पहले यह बताना जरूरी है कि मैं माँ की इतनी भक्ति क्यों करता हूँ। इसका उत्तर मेरे पास नहीं है। लेकिन ऐसा प्रश्न होने पर कि 'मैं उनके चरणों से दूर हट सकता हूँ ? मैं चुप रह जाता हूँ। मेरा मन प्राण उनके चरण-आश्रय ही में पड़ा रहता है । कभी कभी तो ऐसा लगता है कि उनकी चिंता स्थगित होने से मेरा जीवन भी शेष हो जायगा। मुझे किसी परमार्थ की सिद्धि की इच्छा नहीं है। यदि कोई ऐसा कहे कि मैं रोगमुक्त हो उनका शरणागत हो गया हूँ, तो यह भूल है। उनकी दिव्य विभूतियों के आकर्षण ने मुझे उनके पास खींचा है, तो यह भी नहीं है। उनके विश्वव्यापी वात्सल्य ने स्वतः स्फुरित होकर मुझको हर प्रकार से बाँध लिया है। उनके स्नेह की छाया को छोड़ कर जाने की तो मेरी इच्छा है न सामर्थ्य ही हैं।

एक बात और कह सकता हूँ कि उनके दोनों चरण कमल जो मुझे अखण्ड आनन्द प्रदान करते हैं। उसका एक अंश भी पार्थिव

या अपार्थिव वस्तु नहीं दे सकती। यही मेरा बंधन है और इस बंधन को मैं परम मुक्ति मानता हूँ।

माँ कहती हैं, "मैं ही तुझे संसार की सीमा से अनेक बार बाहर लाई हूँ, तेरे जैसे विलास प्रिय को संसार से खींचना सहज न था।" मैं भी अच्छी तरह समझता हूँ कि मेरे मन की जो पागलों की सी हालत है, उनकी अहेतुकी करुणा के बिना उनके आश्रय में पड़ा रहना मेरे लिए असम्भव ही था। माँ और भी कहती हैं "यह कोई नहीं समझता है कि संसार में पड़े रहने पर बहुत पहले ही तू निधन को प्राप्त हो जाता।" माँ की इस अमोघ वाणी की सत्यता मैं अंतर में अनुभव करता हूँ।

मेरी स्त्री मेरे साधन पथ में अनुकूल ही रही। यह जन्म ही से खूब अभिमानिनी थीं, धनवान सम्भ्रान्त परिवार की प्रथम संतान होने के कारण आत्ममर्यादा और कुलीनता का भाव नस नस में भरा है। आठ नौ वर्ष की आयु में जब मैंने पहले पहल देखा था तब इनकी निर्मल सरलता का जो चित्र मेरी आँखों में खिंचा था वह आज भी वर्तमान है।

माँ से जब मेरा प्रथम साक्षात हुआ तब मातृचरण पूजा में वे मेरी प्रधान सहायिका थीं। मेरे वर्तमान जीवन के प्रारम्भ में वे माँ की सब रूपों में श्रद्धा करतीं किन्तु जन्म से अभिमानिनी होने के नाते उनका भाव विद्रोह जग गया है स्वयम् आड़ में पड़कर अपना अदृष्ट बिगाड़ रही हैं।

मैं जितना माँ की ओर खिंचता गया, संसार और समाज के प्रति उदासीन होने लगा, इतना वैराग्य मेरी स्त्री को न सुहाया। वे एक दिन बोलीं, "क्या घर में बैठ कर धर्म नहीं हो सकता है? यों ही दौड़ भाग करना, शरीर के ऊपर अत्याचार करना बच्चों की ओर ध्यान न देना, यह धर्म पालन करना ही अच्छा है?" मैं उन्हें समझाने की चेष्टा करता कि संसार की शृंखला छोड़ने पर ही संसार की दृष्टि में मनुष्य उच्छृंखल कहलाता है। वास्तव में उछृंखल न हुए संसार में भोगों से दूर रहकर भी मनुष्य का धर्म-पथ की ओर जाना सहज नहीं है।

किन्तु मेरी इस प्रबोध वाक्य का कुछ भी फल न हुआ। ११ अथवा १२ वर्ष पहले एक दिन वे सहसा कह उठीं "आपका जिस प्रकार का भाव देख रही हूँ, आपका बाहर या घर में रहना दोनों हमारे लिए एक है।" मैंने हँसते हँसते कहा "यदि संन्यासी होकर कहीं दूर चला जाऊँ तो तुम लोगों को कुछ कष्ट तो नहीं होगा?" उन्होंने अभिमान से कहा, "कदापि नहीं।" लड़का लड़की तब छोटे थे वे भी वहीं उपस्थित थे। मैंने एक नोटबुक में यह लिखकर रख लिया। ऐसी बातें हम लोगों में बहुत समय हुआ करतीं। निरंजन उन्हें विशेष रूप से समझाने की चेष्टा करते किन्तु वे किसी तरह भी शान्त न होतीं।

इसके बाद मुझे वही असाध्य बीमारी हुई। उन्होंने दैविक सहिष्णुता और धैर्य के साथ अपनी जरा भी परवाह न करते हुए बहुत ही स्थिर मनसे मेरी सेवा करती रहीं। प्रतिकूल अवस्था

का घटनाक्रम सह्य करते हुए ऐसी एकनिष्ठ सेवा द्वारा अपनी इच्छा शक्ति को जाग्रत रखना बहुत कम ही दिखाई पड़ता है।

मेरे अच्छे होने से कुछ पहले उनका प्रिय छोटा भाई मृत्यु को प्राप्त हुआ। उससे उनका मन एकदम निर्जीव सा हो गया। इसके बाद वे प्रत्येक विषय में निरुत्साही हो गईं। श्री श्री माँ के प्रति मेरा प्रबल आकर्षण उन्हें पहले ही नहीं रुचता था, अब इस विषय में वे बिलकुल विरुद्ध हो गईं, बच्चे भी उन्हीं के रङ्ग में रङ्ग गए।

उन लोगों को ऐसा लगने लगा मानों मैं उन लोगों से दूर होता चला जा रहा हूँ। वे ही नहीं वरन् मेरे और सब कुटुम्बी भी मेरे इस आचरण को अनुचित समझने लगे। यहाँ तक कि मेरे बड़े भाई सतीशचन्द्र राय जिनके साथ मेरा बहुत प्यार था जो सर्वदा धर्म, शास्त्र, नीति की मर्यादा की रक्षा करते थे उन्होंने भी एक दिन लिख भेजा "तुम किस ओर जा रहे हो समझ में नहीं आता, स्त्रियों का आश्रय ले कोई भी कभी परमार्थ लाभ कर सका ऐसा किसी इतिहास में नहीं पढ़ा गया है, मुझे डर है तुम्हारी त्रिशंकु की तरह अवस्था न हो जाय।"

मैंने देखा कि जब मैं स्वयम् अपनी अवस्था नहीं समझ पाता तो दूसरों को कैसे समझा सकता हूँ। इसी कारण माँ के विषय में स्त्री से बातें करना प्रायः बन्द सा हो गया। फल यह हुआ कि सभी और विशेष कर मेरी स्त्री एकदम मर्माहत होकर मेरे बिल्कुल विरुद्ध हो गईं और मेरे आचरण को अनुचित कहने में तनिक भी संकुचित न हुईं।

लौकिक धर्म और समाज के सम्मुख स्त्री स्वामी का बन्धन अटूट है, यहाँ तक कि ऐसी जनश्रुति है कि स्वर्ग जाने पर भी एक के लिए दूसरे की अपेक्षा करनी पड़ती है। इस कारण ऐसे अटूट बन्धन में शिथिलता आने पर मनमें तूफान सा उठना खूब ही स्वाभाविक है। मैं चुपचाप सब विरोधों को सहता हुआ माँ से प्रार्थना करता, "माँ इन लोगों को सुबुद्धि दो, शान्ति दो।" इन लोगों के ऐसे व्यवहार से मैं दुनिया से दूर हटता ही गया।

संसार को मिथ्या कहकर धर्म पथ की ओर अग्रसर होना यह मेरा लक्ष्य न था। मेरी शिक्षा भी ऐसी थी कि जब तक मैं सच हूँ तब तक सब सत्य है। फिर भी जिस मूलसत्ता के आधार पर समस्त प्राणियों की सत्ता का प्रकाश हो उस शक्ति चेतना में प्रतिष्ठित रहने के लिए समयानुसार संसार के प्रति आकर्षण कम करना ठीक रहता है क्योंकि ईश्वर चिन्ता की औषधि के साथ में एकान्तवास पथ्य भी अत्यन्त आवश्यक है। सर्वदा संसार में फँसे रहना यह तो किसी शास्त्र में भी नहीं लिखा है।

मैं अपनी स्त्री की बात जब सोचता हूँ, तब मुझे लगता है कि उसकी सब प्रतिकूल चेष्टाओं के मूल में उसकी पति पुत्र के प्रति भावी मंगलकामना थी। उन्होंने व्यावहारिक दृष्टि से श्री श्री माँ के सङ्ग का वर्जन किया यह सत्य है किन्तु उन्होंने प्रत्येक विचार और कार्य में विरुद्धभाव से माँ की साधना की।

'श्री श्री माँ की शुभ इच्छा ही जययुक्त हो।'

---

(५) उनके द्वारा अथवा उनकी दृष्टि के द्वारा हम लोगों की बुद्धि विवेचना के अनुकूल या प्रतिकूल जो कुछ घटे उसमें कुछ निगूढ़ रहस्य छिपा है ऐसा विश्वास कर बिना प्रतिवाद किए शान्त मन से सब ग्रहण करना चाहिये।

(६) किसी की सुकृति के फल से यदि माँ उसे आदेश दे तो बिना कुछ सोचे बिना दुविधा किए उसका प्रतिपालन करना चाहिये, कभी भूल से भी माँ की इच्छा और अपनी इच्छा मिलाने की चेष्टा न करो।

(७) उनको उन्हीं के भाव में (अपने को चाहे अच्छा लगे या बुरा लगे) जितना रख सको उसी में जगत का मंगल है। कभी इसके विपरीत न हो इसका ध्यान रखो। उनके किसी भी काम में यहाँ तक कि शरीर रक्षा सम्बन्धी सुविधाओं में भी हमारी बुद्धि विवेचना व्यर्थ है, उनका संकेत पाने पर उसका प्रतिपालन करो अन्यथा चुपचाप देखना सुनना ही श्रेष्ठ है।

(८) भगवान की चिन्ता करो यही भिक्षा वह सबसे माँगती हैं। उनकी सेवा के अपेक्षा, साधन भजन कर उनकी कृपालाभ करना सहज है।

(९) उनके पास आने पर चरण स्पर्श की इच्छा जागे तो उस समय चित्त दर्पण की भांति स्वच्छ होना आवश्यक है। जो जितना भूखा, प्यासा, श्रद्धाशील तथा शरणागत हो सकेगा उतना ही वह उनके अमृत स्पर्श से तृप्ति लाभ कर सकेगा।

(१०) उनके निकट कुछ भेद भाव नहीं है, अपना भाव ही

आकर्षण या विकर्षण का सूत्र है। जैसी जिसकी भावना वैसी उसकी सिद्धि। उनके पास जो जितना शून्य मन और शरीर लेकर जायगा वही सहज में पूर्णता की ओर अग्रसर होगा।

(११) उनकी श्री मुख की कोई भी बात व्यर्थ नहीं होती एवं उनकी स्मृति काल बन्धन के अतीत है यह स्मरण रखना आवश्यक है।

(१२) प्रारब्ध को मिटाने के लिए उत्कट तपस्या की आवश्यकता है। दुःख दैन्य हमारे प्रारब्ध के फल हैं–यह मन में निश्चय कर सुख दुःख में उनकी कृपा दृष्टि पर विश्वास रख कर चलना चाहिये।